I A S

P C S

GS WORLD

IAS PCS

Committed To Excellence

(1 जुलाई से 14 जुलाई तक)

# आलेख सार

अंक - 13

## संपादकीय
## Analysis
## 360°

# एक कदम, सफलता की ओर...

**प्रिय अभ्यर्थियों!**

जैसा कि आप जानते हैं, कि जी०एस० वर्ल्ड प्रबंधन पिछले कुछ वर्षों से लगातार आपके अध्ययन सामग्री की गुणवत्ता संवर्धन हेतु सतत् प्रयासरत है, जिसके लिए दैनिक स्तर पर अंग्रेजी समाचार-पत्रों का सार एवं जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा सहायक सामग्री उपलब्ध करायी जाती है। साथ ही साप्ताहिक स्तर पर हिन्दी समाचार-पत्रों का सार उपलब्ध कराया जाता था, किंतु सिविल सेवा परीक्षा के बढ़ते स्तर एवं बदलते प्रश्नों को देखते हुए जी।एस। वर्ल्ड प्रबंधन ने साप्ताहिक समाचार-पत्रों के सार के स्थान पर अर्द्धमासिक स्तर पर संपादकीय Analysis 360$^0$ आरंभ किया है।

**संपादकीय Analysis 360$^0$ में नया क्या है?**

- इसमें महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विभिन्न हिन्दी समाचार-पत्रों में आए संपादकीय लेखों का सार उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन संपादकीय लेखों को समग्रता प्रदान करने के लिए इनसे जुड़ी सभी बेसिक अवधारणाओं को जीएस वर्ल्ड टीम द्वारा उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन मुद्दों से संबंधित 2013 से अब तक सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा के प्रश्नों को भी नीचे दिया गया है, जिससे अभ्यर्थी उस मुद्दे से जुड़े प्रश्नों को समझ सके।
- इन मुद्दों से संबंधित संभावित प्रश्नों को भी इन आलेखों के साथ दिया गया है, जिसका अभ्यास अभ्यर्थी स्वयं कर संस्थान में अपने उत्तर की जाँच भी करा सकते हैं।

*जी.एस. वर्ल्ड प्रबंधन आपके उज्ज्वल एवं सफल भविष्य के लिए प्रतिबद्ध है।...*

नीरज सिंह
(प्रबंध निदेशक, जी.एस. वर्ल्ड)

GS World
Committed To Excellence

# विषय-सूची


1. एक वर्ष पूरा होने पर जीएसटी की समीक्षा 4

2. बेलगाम होती जनसंख्या 11

3. न्यूनतम समर्थन मूल्य का आधार 18

4. सर्जिकल स्ट्राइक का सच 28

5. उच्च-शिक्षा आयोग का गठन 32

6. जेल और मानवाधिकार 37

7. लोकपाल की प्रतीक्षा 41

8. भारत में पुलिस-सुधार की स्थिति 45

9. दिल्ली की संवैधानिक परिस्थिति 49


GS World
Committed To Excellence

# एक वर्ष पूरा होने पर जीएसटी की समीक्षा

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-3 (आर्थिकी) से संबंधित है।*

**वस्तु एवं सेवा कर के क्रियान्वयन को एक साल पूरा हो गया है। भारत में इसे आजादी के बाद के सबसे बड़े कर-सुधार की संज्ञा दी गई है। पिछले एक वर्ष में छोटे व्यापारियों की चिंता एवं कर दायरे की विस्तार की समीक्षा आवश्यक है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'दैनिक जागरण' तथा 'जनसत्ता' में प्रकाशित लेख का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## जीएसटी का एक साल पूरा, देश में एक नई टैक्स प्रणाली को मिली कामयाबी

यदि सरकार वस्तु एवं सेवा कर अर्थात् जीएसटी पर अमल के एक वर्ष पूरे होने को एक उपलब्धि के तौर पर देख रही है तो यह स्वाभाविक ही है। भारत सरीखे बड़े देश में एक नई टैक्स प्रणाली को क्रियान्वित करना एक बड़ा काम ही कहा जाएगा। इस पर आश्चर्य नहीं कि इसे आजादी के बाद सबसे बड़े टैक्स सुधार की संज्ञा दी गई। यह अच्छा है कि एक साल बाद इस टैक्स व्यवस्था को उन अनेक समस्याओं से मुक्ति मिलती दिख रही है, जो प्रारंभ मे सामने आई थीं और जिनके चलते कारोबारियों में नाराजगी घर कर रही थी। चूँकि इस नाराजगी को राजनीतिक मसला बनाकर चुनावी लाभ उठाने की कोशिश की गई, इसलिए जीएसटी की जटिलताओं को दूर करना सरकार के लिए एक चुनौती बन गया था।

हालाँकि एक बड़ी हद तक इस चुनौती से पार पा लिया गया है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अभी भी कुछ समस्याएँ शेष हैं। अब जब सरकार जीएसटी के एक साल को एक उपलब्धि के तौर पर रेखांकित करने जा रही है तब फिर उसे इस पर भी ध्यान देना होगा कि यह टैक्स व्यवस्था और अधिक सुगम कैसे बने? इसी के साथ उसे रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म सरीखी लंबित व्यवस्थाओं पर आगे बढ़ने की भी तैयारी करनी होगी, लेकिन ऐसा करते समय उसे यह सावधानी बरतनी होगी कि वैसी समस्याएँ आड़े न आने पाएँ जैसी पहले जीएसटी को लागू करते समय और फिर ई-वे बिल को अपनाते समय आई थीं।

यह हैरानी की बात ही है कि तकनीक के क्षेत्र के पेशेवर लोगों की भागीदारी के बावजूद तकनीकी बाधाएँ दूर होने का नाम नहीं ले रही हैं। कम से कम एक साल बाद तो तकनीकी बाधाओं को दूर कर ही लिया जाना चाहिए। नि:संदेह प्रत्येक नई व्यवस्था में कुछ न कुछ समस्या आती ही है, लेकिन वह तब संकट बन जाती है जब उससे संबंधित तकनीक साथ नहीं देती।

जीएसटी के एक साल बाद यह भी देखा जाना चाहिए कि टैक्स चोरी के तौर-तरीकों पर लगाम कैसे लगे? इन तौर-तरीकों के खिलाफ सख्ती बरतने में तभी आसानी होगी जब रिटर्न फाइल करने की प्रक्रिया भी आसान बनेगी। जीएसटी का दूसरा साल पहले के मुकाबले कहीं अधिक आसान और लक्ष्यों को पूरा करने वाला बनना चाहिए। नि:संदेह ऐसा तभी हो पाएगा जब जीएसटी संबंधी कानून में बदलाव का काम अपेक्षित समय में पूरा हो जाए।

## उपलब्धियों एवं भविष्य के लिए सीख का साल (बिजनेस स्टैंडर्ड)

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को लागू हुए एक साल पूरा हो चुका है। इस दौरान देश नई कर प्रणाली को लेकर व्याप्त अनिश्चितता और संदेह के माहौल से निकलने में काफी हद तक सफल रहा है। मीडिया में की जा रही तमाम आलोचनाओं के बावजूद केंद्र और राज्यों के वित्त मंत्रियों ने अप्रत्यक्ष कर प्रणाली को लागू करने में वाकई में भागीरथ प्रयास किया है। जीएसटी परिषद की बैठकों में आम सहमति से किए गए फैसलों ने इस ऐतिहासिक सुधार के लिए मजबूत बुनियाद तैयार की।

पुरानी अप्रत्यक्ष कर प्रणाली की जटिलताओं के साथ केंद्र, राज्य एवं स्थानीय अधिकारियों की तरफ से लगाए जाने वाले विभिन्न शुल्कों के चलते कारोबारियों एवं उद्यमियों को अनुपालन संबंधी दिक्कतों और उपभोक्ताओं को करों के चलते बढ़े बोझ का सामना करना पड़ता था। पहले कारोबार का भौतिक हिस्सा करारोपण से बच निकलता था क्योंकि पूरी व्यवस्था ही खामियों और कामचलाऊ इंतजामों से भरी होती थी। उसके स्थान पर पूरे देश में एकसमान कर प्रणाली को लागू करना निस्संदेह देश को एक साझा बाजार में तब्दील करने की दिशा में उठाया गया आंदोलनकारी कदम है। सभी राज्यों ने एक सुर में काम किया और केंद्र ने भी समयबद्ध तरीके से क्षतिपूर्ति आवंटन का अपना वादा पूरा किया, वह 'सहकारी संघवाद' की भावना को परिलक्षित करता है। नीति-निर्माण में दखल रखने वाले दबाव समूहों को देखते हुए ऐसी उपलब्धि के बारे में सोच पाना भी मुश्किल था। लिहाजा, इसी आधार पर जीएसटी के पहले साल को उल्लेखनीय माना जा सकता है।

जीएसटी प्रणाली की स्वीकार्यता को इसी से आँका जा सकता है कि उपभोक्ता एवं सरकार दोनों ही अब पेट्रोलियम उत्पादों को भी इसके दायरे में लाने के मसले पर चर्चा कर रहे हैं। अगर ऐसा होता है तो कारोबार जगत एवं सरकार दोनों की ही क्षमता सुधारने में काफी मदद मिलेगी। इसे जीएसटी प्रणाली की कामयाबी के रूप में अगले मील के पत्थर के तौर पर देखा जा रहा है। जीएसटी राजस्व संग्रह में लगातार वृद्धि का रुझान राज्यों की चिंताओं को कम करता है। ऐसी सूरत में जीएसटी परिषद के पास पेट्रोलियम उत्पादों, बिजली और रियल एस्टेट खरीद को कर दायरे से बाहर रखने पर पुनर्विचार करने का वाजिब मौका है। उम्मीद है कि आने वाले साल में जीएसटी परिषद के विचार का यह प्रमुख बिंदु होगा।

जहाँ नीतिगत परिप्रेक्ष्य में ठीकठाक बदलाव की जरूरत है वहीं शुरुआती महीनों में तकनीकी खामियों के चलते प्रतिकूल असर पड़ा। जीएसटी

अब यह भी समय की माँग है कि जीएसटी के स्लैब कम करने के बारे में किसी फैसले पर पहुँचा जाए। जब सभी यह मान रहे हैं कि चार स्लैब ज्यादा हैं तो फिर किसी नतीजे पर पहुँचा जाना चाहिए। रियल एस्टेट को जीएसटी के दायरे में लाने पर भी फैसले की दरकार है। इस बारे में कोई फैसला होने पर ही पेट्रोलियम उत्पादों को जीएसटी के दायरे में लाने पर कोई सार्थक चर्चा संभव है। चूँकि जीएसटी परिषद ने आम सहमति से काम करने के मामले में एक मिसाल कायम की है और अभी तक किसी भी मामले में मतदान के जरिये फैसला कराने की नौबत नहीं आई है इसलिए इस परिषद को एक अनुकरणीय उदाहरण के तौर पर देखा जाना चाहिए।

## दूसरे वर्ष में जीएसटी ( बिजनेस स्टैंडर्ड )

अपनी शुरुआत के एक वर्ष बाद वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) व्यवस्था में अभी भी सुधार कार्य जारी हैं। नई अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था दो एकदम विपरीत तस्वीरों के बीच छिपी हुई है जो सरकार और विपक्ष द्वारा पेश की जा रही है। सरकार जीएसटी को 'अच्छा और सामान्य कर' बता रही है जिसने अप्रत्यक्ष कर का बोझ कम किया, कारोबार को आसान बनाया और कर दायरा बढ़ाकर पारदर्शी कराधान व्यवस्था की दिशा में पहल की, वहीं कांग्रेस ने इसे भयावह कर बताया है। उसने उन असुविधाओं की ओर भी ध्यान दिलाया है जिनका सामना करदाताओं को करना पड़ा।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि जीएसटी दो वजहों से सबसे जटिल सुधार है। पहला, इसमें 17 करों और 23 उपकरों का विलय किया गया। इसके तहत दुनिया के सबसे बड़े आर्थिक तंत्रों में से एक में पूरा बदलाव करने की जरूरत पड़ी। दूसरी बात, इसके लिए कर आधार के केंद्र और राज्यों के बीच संवैधानिक बँटवारे की व्यवस्था में संशोधन किया गया। इसके लिए तमाम संघीय भेद और राजनीतिक फलक के बीच राजनीतिक सहमति की आवश्यकता पड़ी। जीएसटी परिषद को इस असंभव नजर आ रहे काम को पूरा करने का पूरा श्रेय मिलना चाहिए। राज्यों की एक बड़ी चिंता यह थी कि उन्हें राजस्व का नुकसान हो सकता था लेकिन चालू वित्त वर्ष में मासिक जीएसटी संग्रह के अब औसतन 10 खरब रुपये हो जाने की आशा है। इससे केंद्र और राज्य दोनों को अपने राजस्व लक्ष्य प्राप्त होंगे और जीएसटी व्यवस्था थोड़ी स्थिर होगी। जीएसटी की एक बड़ी उपलब्धि कर दायरे का विस्तार है। सरकार के मुताबिक 45 लाख नए नाम कर दायरे में आए। यह किसी भी नई व्यवस्था के लिए पहले साल में उल्लेखनीय उपलब्धि है। अरुण जेटली का यह दावा भी सही है कि जीएसटी क्रियान्वयन ने प्रत्यक्ष कर दायरे के विस्तार में भी मदद की है। यह बात इस वर्ष निजी तौर पर चुकता अग्रिम आय कर संग्रह में 44 फीसदी के इजाफे से जाहिर होता है।

बहरहाल, यह भी सच है कि जीएसटी का क्रियान्वयन बिना पर्याप्त तैयारी के किया गया और यह बात विभिन्न तरीकों से जाहिर भी हुई। तकनीकी दिक्कतों से लेकर दरों को लेकर अस्पष्टता ने बहुत भ्रम पैदा किया और रिटर्न दाखिल करने और रिफंड की मंजूरी में समस्याएँ आईं। हालाँकि इसमें से कुछ बातों में बाद में सुधार कर लिया गया लेकिन अभी भी जीएसटी को अच्छा और सहज कर बनाने में काफी काम करना होगा। मूलरूप से जीएसटी की अवधारणा विविध अप्रत्यक्ष करों को समेट कर चुनिंदा कर दायरों में लाने की थी, ताकि इस जटिल व्यवस्था को सरल बनाया जा सके। वह समस्या अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। कर जुटाने के लिहाज से अहम उत्पाद मसलन पेट्रोलियम, डीजल, शराब और नेटवर्क के ठीक से काम नहीं करने की वजह से कई महीनों तक रिटर्न भरने की तारीखों को बढ़ाना पड़ा। जीएसटी प्रणाली के तहत अंतरराज्यीय कारोबार में कर वंचना रोकने के लिए अहम ई-वे बिल व्यवस्था को भी अब लागू किया जा रहा है। लेकिन जीएसटीएन की अक्षमता के ही चलते ई-वे बिल व्यवस्था को टुकड़ों में लागू करना पड़ा है।

शुरुआती महीनों में कारोबार जगत को काफी दिक्कतों का भी सामना करना पड़ा। बड़े पैमाने पर उत्पादों को अंतर-राज्य आवाजाही में जोड़ा गया था और स्थानीय अधिकारियों ने अस्थिर रवैया अपनाते हुए माल जब्त भी कर लिया। इस तरह की जब्तियों को अदालतों में चुनौती देने के भी काफी मामले सामने आए। इन मामलों में अदालतों के रवैये से यही पता चलता है कि कर चोरी रोकने की अतिवादी चाह के चलते कर अधिकारी भी समान रूप से दोषी थे। इसी तरह कारोबारी भी नए कर कानून के मुताबिक जरूरी दस्तावेज नहीं दे पा रहे थे। बीते साल के दूसरे हिस्से में जाकर हालात उस समय सुधरे जब केंद्रीय राजस्व बोर्ड ने स्थानीय अधिकारियों के लिए दिशा-निर्देश जारी किए और प्रक्रियागत बदलाव किए।

सुर्खियों का विषय बना दूसरा मुद्दा निर्यातकों के रिफंड में अव्यवस्था का था। बड़े हिस्से में निर्यातकों को किया जाने वाला कर रिफंड बाधित रहा। रिफंड की गणना का जटिल फॉर्मूला होने और स्थानीय स्तर पर अधिकारियों के लेटलतीफी वाले रवैये के चलते यह समस्या पैदा हुई। हाल में नीति-निर्माताओं ने रिफंड दावों के भुगतान में तेजी के लिए रिफंड पखवाड़ा शुरू करने का फैसला किया। रिफंड में देरी होने से निर्यातकों की कार्यशील पूंजी कई महीनों तक फँसी रही जिससे उनके कारोबार पर भारी दबाव देखने को मिला। निर्यातकों में व्याप्त असंतोष को दूर करने पर अविलंब ध्यान दिए जाने की जरूरत है ताकि असली रिफंड दावों को निर्धारित समय के भीतर निपटाया जा सके।

जीएसटी के बारे में कुछ अन्य पहलू भी हैं जिनके बारे में नीति-निर्माताओं को आने वाले समय में ध्यान देना होगा। पहला, जीएसटी कर की दरें और दूसरा, विवादों के निपटान की प्रणाली है।

**जीएसटी की दरें:** जीएसटी के तीन पहलू एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। इनपुट टैक्स क्रेडिट की उपलब्धता, जीएसटी परिषद की बार-बार दरों को तर्कसंगत बनाने की कोशिश और मुनाफाखोरी-रोधी प्राधिकरण द्वारा जुर्माना लगाने के डर ने जीएसटी लागू होने से शुरुआत में महँगाई बढने की आशंकाओं को दूर करने का काम किया। कई कर दरों के अलावा डिमेरिट एवं लग्जरी उत्पादों पर क्षतिपूर्ति उपकर का प्रावधान होने से कर दरों एवं सीमा में बदलाव की पर्याप्त गुंजाइश है। हमारा मत है कि जीएसटी का औसत मासिक संग्रह 1 लाख करोड़ रुपये के करीब हो जाने से आने वाले साल में दरों में काफी हद तक स्थिरता आएगी। इससे विभिन्न उत्पादों एवं सेवाओं को अलग-अलग कर दायरे में रखे जाने को लेकर पैदा हुए विवादों को भी एक हद तक दूर किया जा सकता है।

**विवाद निपटान प्रणाली:** भारत के जटिल कारोबारी एवं प्रशासनिक परिदृश्य को देखते हुए जीएसटी संबंधी मामलों में भी विवाद खड़ा होने की आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता है। कई उच्च न्यायालयों में तमाम बिंदुओं को लेकर याचिकाएं दाखिल की गई हैं। अगर जीएसटी क्रियान्वयन संबंधी मसलों को छोड़ दें तो भी कई नीतिगत कदमों को अदालतों में चुनौती दी गई है। मसलन, जीएसटी लागू होने से पहले चुकाए गए कर पर भी क्रेडिट दिए जाने के प्रावधान को न्यायालय में चुनौती दी गई है। हालाँकि बंबई उच्च न्यायालय ने इस याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि यह एक नीतिगत कदम है और सरकार को इसका विशेषाधिकार है। हालाँकि न्यायपालिका ने जीएसटी के संबंध में कुछ असहज सवाल उठाए हैं लेकिन इस प्रणाली के ढाँचे को लेकर कोई

बिजली अभी भी जीएसटी के दायरे से बाहर हैं। इतना ही नहीं निर्यातकों के कर रिफंड को आसान बनाने से संबंधित जीएसटी की कई पहल मसलन ई-वे बिल या ई-वॉलेट आदि के क्रियान्वयन को लेकर अभी तक दिक्कतें बनी हुई हैं। आखिर में, जीएसटी परिषद चुनावी परिदृश्य को लेकर शंकालु नजर आ रही है। चीनी उपकर की माँग से इस बात को समझा जा सकता है। अगर उस माँग को स्वीकार कर लिया गया तो देश में जीएसटी का मूलभूत सिद्धांत ही ध्वस्त हो जाएगा। भारत को एक सहज और आसान अनुपालन वाली कर व्यवस्था की आवश्यकता है। इसकी अनुपालन लागत बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इससे छोटे उद्यमों की उत्पादकता प्रभावित होती है। दूसरे वर्ष में यह जीएसटी परिषद के सामने एक बड़ी चुनौती है।

## कारोबारियों को जीएसटी की जटिलताओं से बचाया जाए

## यही है समय की माँग और जरूरत (दैनिक जागरण)

यह समय की माँग और जरूरत है कि कारोबारियों को जीएसटी की जटिलताओं से बचाया जाए, लेकिन इस टैक्स व्यवस्था को सरल-सुगम बनाने के नाम पर ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए जिससे टैक्स चोरी का सिलसिला कायम रहे या फिर और गति पकड़े। यह सूचना कारोबार जगत को राहत देने वाली हो सकती है कि जीएसटी परिषद रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म खत्म करना चाह रही है, लेकिन यह ठीक नहीं कि पहले जिस व्यवस्था को टैक्स चोरी रोकने में सहायक माना जा रहा था उसे अब लागू न करने पर विचार किया जा रहा है।

रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म वह प्रस्तावित व्यवस्था है जिसमें जीएसटी के तहत पंजीकृत उन व्यापारियों को खुद टैक्स देना होगा, जो गैर-पंजीकृत व्यापारियों से एक दिन में पाँच हजार या उससे अधिक का सामान या सेवाएँ हासिल करते हैं। पहले इस व्यवस्था को लागू करने से इसलिए बचा जाता रहा ताकि व्यापारियों को अनावश्यक परेशानी का सामना न करना पड़े, लेकिन ऐसा लगता है कि अब उससे पूरी तौर पर पल्ला झाड़ने की तैयारी है।

कहना कठिन है कि इस मसले पर अंतिम निर्णय क्या होगा, लेकिन इस पर गौर करना होगा कि जीएसटी परिषद के फैसले से कहीं टैक्स चोरी करने वाले फायदे में न रहें। रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म के साथ-साथ कुछ उन प्रावधानों को भी ठंडे बस्ते में डालने पर विचार किया जा रहा है जो कथित तौर पर कारोबारियों के लिए असुविधाजनक हैं। इससे इन्कार नहीं कि जीएसटी के कई प्रावधान खासे जटिल हैं, लेकिन कुछ सरल प्रावधान भी उन कारोबारियों को जटिल नजर आते हैं जो कंप्यूटर-इंटरनेट आधारित तकनीक से अपरिचित हैं अथवा उसका इस्तेमाल करने को लेकर तत्पर नहीं।

एक समस्या यह भी है कि जीएसटी आधारित तकनीक उतनी सुगम नहीं जितनी होनी चाहिए। इस सिलसिले में वित्त सचिव का यह कहना है कि हमें तकनीक ने नीचा दिखाया, लेकिन तकनीक के कुछ जानकार जीएसटी के जटिल नियम-कानूनों को दोष दे रहे हैं? बेहतर हो कि इस पहेली का हल जल्द निकले कि जीएसटी संबंधी तकनीक जटिल है या फिर उसके नियम-कानूनों के अनुपालन की प्रक्रिया? निःसंदेह यह समझ आता है कि चुनावी साल में सरकार जीएसटी के ऐसे प्रावधान बनाने से बचे जो कारोबारियों के लिए सिरदर्द बन जाएं, लेकिन यह समझना कठिन है कि वास्तव में सरल नियम-कानून क्यों नहीं बनाए जा सकते? यह किसी से छिपा नहीं कि जीएसटी के कई सरल बताए जाने वाले प्रावधान भी कठिन हैं। बड़ा फैसला नहीं सुनाया है। इसका श्रेय न्यायिक स्तर के नियम अनुपालन वाली कर प्रणाली के अमल एवं डिजाइन को दिया जाना चाहिए।

वैसे समानांतर अर्थव्यवस्था के खात्मे संबंधी वास्तविक लाभ को महसूस किया जाना अभी बाकी है। इसमें कारोबारों के लिए तकनीकी साधनों एवं विश्लेषकों की सेवाएँ लेना जरूरी हो गया है। आँकड़े बताते हैं कि जून एवं जुलाई 2017 के बीच ही 6.6 लाख नए कर एजेंटों ने जीएसटी में पंजीकरण कराया था। इसका मतलब है कि पहले अप्रत्यक्ष कर दायरे से बाहर रहने वाले कारोबार भी अब कर दायरे में शामिल हो चुके हैं। राज्यों में ई-वे बिल प्रणाली को लागू किए जाने के साथ उत्पादों की आवाजाही पर भी नजर रहेगी। जीएसटीएन से जुटाए गए विस्तृत आँकड़ों का आयकर विवरणों से मिलान किया जाएगा जिससे सघन जाँच की राह खुलेगी। यह साफ है कि जीएसटी नेटवर्क के व्यवस्थित होने पर देश का कर आधार बढ़ेगा और कर चोरी करने वालों से सख्ती से निपटा जाएगा।

## संपादकीयः पहला साल (जनसत्ता)

जीएसटी को लागू हुए एक साल हो गया। इसके साल भर के अनुभवों का जायजा लिया जाना और आकलन होना स्वाभाविक है। लेकिन जब सरकार चुनावी साल में प्रवेश कर चुकी हो, तो श्रेय लूटने का लोभ कैसे छोड़ सकती है। सो, 'जीएसटी दिवस' के मौके पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के अलावा कई केंद्रीय मंत्रियों ने भी जीएसटी के गुण गाए और इसे एक बार फिर ऐतिहासिक कदम बताया। जीएसटी की दिशा में पहल यूपीए सरकार के समय ही हो गई थी। पर तब भाजपा को यह कर प्रणाली अलोकतांत्रिक और राज्यों के अधिकारों का हनन करने वाली लगती थी; तब के मुख्यमंत्रियों में जीएसटी के खिलाफ सबसे तीखे बयान नरेंद्र मोदी के ही थे! अब वे जीएसटी को एक युगांतरकारी कदम बता रहे हैं और यूपीए सरकार में वित्तमंत्री रहे पी चिदंबरम मौजूदा जीएसटी की खामियाँ गिना रहे हैं। मोदी का कहना है कि जीएसटी से सरलता और पारदर्शिता आई है, और विकास को मजबूती मिली है। यह सही है कि जीएसटी ने बहुत सारे अप्रत्यक्ष करों को एक कर दिया और इस मायने में इसने बहुत सारी जटिलताएं खत्म की हैं।

जीएसटी से अप्रत्यक्ष कर-संग्रह का दायरा भी बढ़ा है। लाखों नए करदाता बने हैं। लेकिन केंद्रीय वित्तमंत्री अरुण जेटली का यह दावा पूरी तरह सही नहीं कहा जा सकता कि जीएसटी का क्रियान्वयन सबसे कम बाधाकारी रहा है। शुरू के महीनों को याद करें, तो सरकार के बार-बार बदलते फैसलों से ही अड़चनें जाहिर थीं। दरों में बार-बार बदलाव किए गए, बार-बार अधिसूचनाएं जारी की गईं, और इस सब को लेकर काफी समय तक ढेर सारी गफलत बनी रही। शुरुआती दौर में आए दिन नए-नए फरमानों से इस आरोप को बल मिला कि जीएसटी को पर्याप्त तैयारी के बगैर, जल्दबाजी में लागू किया गया। इसकी डिजाइन पर भी सवाल उठते रहे हैं। छोटे व्यापारियों के लिए नियमों को समझना और उनका अनुपालन करना आसान नहीं रहा; कर चुकाना भी उनके लिए खर्चीला हो गया। प्रधानमंत्री के इस तर्क को खारिज नहीं किया जा सकता कि भारत जैसे देश में लग्जरी कार और खाने-पीने की चीजों पर समान कर नहीं हो सकता। लेकिन कर की चार दरों और कई सारे उप-करों के चलते, जीएसटी के जितना सरल होने की उम्मीद की गई थी वह पूरी नहीं हो पाई। प्रधानमंत्री ने जीएसटी के क्रियान्वयन के लिए राज्यों के प्रति आभार जताया है।

यह सही है कि जीएसटी को अमल की मंजिल तक पहुँचने में सबसे बड़ी चुनौती राज्यों को राजी करने की थी, क्योंकि अधिकतर राज्यों को आशंका थी कि जीएसटी के चलते अपने अलग से संसाधन जुटाने

आखिर एक साल बाद भी जीएसटी का रिटर्न दाखिल करना सहज-सुगम क्यों नहीं है? इसे आसान बनाने के लिए लाए जा रहे नए सिंगल रिटर्न फार्म पर तभी संतोष जताया जा सकता है जब वह वास्तव में सरल हो। आखिर इसका क्या मतलब कि कंपोजीशन स्कीम के तहत आने वाले कारोबारियों के लिए पहले हर महीने रिटर्न दाखिल करना ठीक समझ गया, फिर तीन महीने में सिर्फ एक बार और अब यह कहा जा रहा है कि साल में सिर्फ एक रिटर्न भी संभव है। चूँकि जीएसटी को वास्तव में सरल बनाना और टैक्स चोरी के छिद्रों को बंद करना अभी भी शेष है इसलिए इस काम को प्राथमिकता के आधार पर पूरा किया जाना चाहिए।

## जीएसटी प्रणाली में सुधार के लिए सिंगापुर से सीखें सबक

**( बिजनेस स्टैंडर्ड )**

सिंगापुर की सरकार ने वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) की दर को सात फीसदी से बढ़ाकर नौ फीसदी करने का 19 फरवरी, 2018 को ऐलान किया। इस द्वीपीय देश में जीएसटी के 1994 में पहली बार लागू होने के बाद से कर की दर में बढ़ोतरी का यह चौथा मौका होगा। सिंगापुर ने शुरुआत में जीएसटी की दर तीन फीसदी ही रखी थी। पिछली बढ़ोतरी 2007 में हुई तो दर पाँच फीसदी से बढ़ाकर सात फीसदी कर दी गई। कर वृद्धि के नए प्रस्ताव के लिए यह दलील दी गई है कि इससे सरकार को स्वास्थ्य, ढाँचागत विस्तार और सुरक्षा के लिए संसाधन जुटाने में मदद मिलेगी।

सिंगापुर सरकार की इस घोषणा में भारत की सरकार और जीएसटी परिषद की आखिर क्या रुचि हो सकती है? दरअसल सिंगापुर में कर की नई दर को वर्ष 2021 से 2025 के बीच लागू करने की वित्त मंत्री हेंग स्वीकीत की घोषणा भारत की रुचि का मामला हो सकती है। केंद्रीय वित्त मंत्री की अगुआई में बनी जीएसटी परिषद के सदस्यों को सिंगापुर सरकार के इस ऐलान की एक बात अचंभित कर सकती है। आखिर कर की दरों में बढ़ोतरी को चार साल के भीतर क्यों अंजाम दिया जाने वाला है और उसकी घोषणा भी सरकार ने तीन साल पहले ही कर दी है। जरा कल्पना कीजिए कि अगर भारत में इसी तरह का कदम उठाया गया होता तो उद्योग जगत की लॉबी कितनी सक्रिय हो जाती और विपक्षी राजनीतिक दल उस मौके का इस्तेमाल प्रस्तावित कर वृद्धि के खिलाफ नया प्रदर्शन करने के लिए करते।

हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि सिंगापुर में जनवरी 2021 से पहले आम चुनाव होंगे। इसका मतलब है कि सिंगापुर में जीएसटी की बढ़ी दर चुनाव संपन्न हो जाने और नई सरकार के वजूद में आ जाने के बाद ही लागू होंगी। भारत में आम चुनावों के पहले कर की दरों में कटौती तो मुमकिन है लेकिन चुनाव के पहले कर बढ़ाना तो वह फैसला लेने वाली सरकार के लिए अक्सर चुनावी शिकस्त का एक मुकम्मल नुस्खा ही है। फिर भी सिंगापुर की जीएसटी प्रणाली का यह पक्ष अपनाने के बारे में भारत को सोचना चाहिए। मौजूदा परिपाटी के उलट नई कर दरों को लागू करने के पहले ही उसका खाका पेश करने के काफी लाभ हैं। अप्रत्यक्ष कर दरों की घोषणा और उनके क्रियान्वयन के बीच कोई फासला नहीं रखना काफी हद तक उस पुरानी सोच की जड़ता की उपज है जो लाइसेंस-परमिट राज के दौरान नजर आती थी। आर्थिक सुधार लागू होने के कई दशक बाद भी उस रवायत को जारी रखने का कोई कारण नहीं है।

अगर शुल्क दरों में बदलाव की जानकारी पहले ही दे दी जाती है तो असल में उद्योग जगत को उससे लाभ ही होगा। उद्योग अपने उत्पादन में वे सक्षम नहीं रह पाएँगे। इस अंदेशे को दूर करने के लिए राज्यों को जीएसटी परिषद में पर्याप्त अधिकार देने और नुकसान होने पर भरपाई का भरोसा दिलाना पड़ा। यही नहीं, राज्यों के दबाव पर पेट्रोलियम और शराब जैसे राजस्व के दो प्रमुख मदों को जीएसटी से बाहर रखना पड़ा। इस तरह, जो जीएसटी लागू हुआ वह शुरुआती परिकल्पना से कई मायनों में भिन्न हो गया। एक समय वैट को लागू करने में भी दिक्कतें आई थीं। जीएसटी का क्रियान्वयन भी निर्बाध नहीं रहा। जीएसटी से अर्थव्यवस्था को अधिक संगठित रूप मिलने की उम्मीद बांधी गई है, पर केवल कॉरपोरेट के मद्देनजर नहीं, इस दृष्टि से भी आकलन होना चाहिए कि लघु उद्यमों और छोटे व्यवसायों पर इसका कैसा असर पड़ा। पहले साल में, कुल मिलाकर, जीएसटी का अनुभव मिलाजुला रहा है।

और बिक्री के बारे में कोई भी फैसला नई कर दरों को ध्यान में रखते हुए करेगा। अचानक किए जाने वाले फैसलों का बोझ उठाना जरूरी नहीं है। पूर्व सूचना होने से नई दरों के बारे में तर्कसंगत बहस एवं चर्चा की गुंजाइश बनती है और अगर प्रस्तावित दरों में कुछ बदलाव करना जरूरी लगे तो उन्हें भी किया जा सकता है। जीएसटी प्रणाली के तहत शुल्क में बदलाव की पहले घोषणा करने का एक और लाभ भी है। कर दरों के बारे में कोई भी फैसला जीएसटी परिषद ही लेती है जिसमें केंद्र के अलावा सभी राज्यों के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं। सामूहिक निर्णय करने वाली जीएसटी परिषद अगर कर बढ़ाने का कोई फैसला करती है तो उसका ठीकरा किसी एक सरकार पर नहीं फोड़ा जा सकता है। इस तरह केंद्र एवं राज्यों की सरकारें एक हद तक राजनीतिक हमलों से बच जाएंगी।

निश्चित रूप से सिंगापुर में जीएसटी की एकल दर व्यवस्था को भारत फिलहाल अपने यहाँ लागू नहीं कर सकता है। मौजूदा समय में जीएसटी की कई दरों को किसी एक दर में समाहित कर पाना उतना आसान नहीं होगा। भारत के लिए 28 फीसदी की उच्चतम दर को खत्म करना, 18 फीसदी वाली दर को संशोधित कर कुछ कम करना और निम्नतम कर दर को उसी अनुपात में बढ़ाना सरकार के लिए मध्यम अवधि का लक्ष्य होना चाहिए। इससे कर दरों में दोहराव कम होगा और दो तरह की ही दरें रह जाएंगी।

भारतीय जीएसटी प्रणाली की एक बड़ी उपलब्धि यह रही है कि इसके चलते महँगाई नहीं बढ़ी है। लिहाजा यह सुनिश्चित करने की भरसक कोशिश की जानी चाहिए कि समाज के विपन्न तबकों के अधिक इस्तेमाल वाले उत्पादों पर ऊँची दर पर कर न लगे। दो दरों वाली व्यवस्था की तरफ कदम एक समयावधि में चरणबद्ध तरीके से बढ़ाए जाने चाहिए। इससे उपभोक्ताओं के लिए उस बदलाव के असर को झेल पाना आसान होगा और मुद्रास्फीति भी काबू में रहेगी। जीएसटी की नई दर प्रणाली को लागू करने की योजना का खुलासा और चर्चा उसके क्रियान्वयन के काफी पहले ही कर दिया जाना चाहिए। इसी तरह पेट्रोल, डीजल, कच्चा तेल, विमान ईंधन और प्राकृतिक गैस को जीएसटी के दायरे में लाने और उन पर कर लगाने की समयसीमा पहले ही बता दी जानी चाहिए ताकि उद्योग जगत को इतने बड़े बदलावों के लिए तैयारी का वक्त मिल सके।

सिंगापुर की इकलौती दर वाली जीएसटी व्यवस्था भारत के लिए मॉडल नहीं हो सकती है। लेकिन क्रियान्वयन के काफी पहले कर दरों की घोषणा कर देने की परंपरा का अनुसरण भारत को जरूर करना चाहिए। जीएसटी परिषद की 21 जुलाई को होने वाली बैठक में इस दिशा में पहल की जा सकती है।

Committed To Excellence

# GS World टीम...

## सारांश

- इसे आजादी के बाद सबसे बड़े टैक्स सुधार की संज्ञा दी गई, इसमें 17 करों और 23 उपकरों का विलय किया गया। इसके लिए कर आधार के केंद्र और राज्यों के बीच संवैधानिक बँटवारे की व्यवस्था में संशोधन किया गया। रियल एस्टेट को जीएसटी के दायरे में लाने पर भी फैसले की दरकार है। इस बारे में कोई फैसला होने पर ही पेट्रोलियम उत्पादों को जीएसटी के दायरे में लाने पर कोई सार्थक चर्चा संभव है।
- सरकार जीएसटी को 'अच्छा और सामान्य कर' बता रही है जिसने अप्रत्यक्ष कर का बोझ कम किया, कारोबार को आसान बनाया और कर दायरा बढ़ाकर पारदर्शी कराधान व्यवस्था की दिशा में पहल की।
- राज्यों की एक बड़ी चिंता यह थी कि उन्हें राजस्व का नुकसान हो सकता था लेकिन चालू वित्त वर्ष में मासिक जीएसटी संग्रह के अब औसतन 10 खरब रुपये हो जाने की आशा है। इससे केंद्र और राज्य दोनों को अपने राजस्व लक्ष्य प्राप्त होंगे और जीएसटी व्यवस्था थोड़ी स्थिर होगी।
- जीएसटी की एक बड़ी उपलब्धि कर दायरे का विस्तार है। सरकार के मुताबिक 45 लाख नए नाम कर दायरे में आई। जीएसटी क्रियान्वयन ने प्रत्यक्ष कर दायरे के विस्तार में भी मदद की है। यह बात इस वर्ष निजी तौर पर चुकता अग्रिम आय कर संग्रह में 44 फीसदी के इजाफे से जाहिर होता है।
- मूलरूप से जीएसटी की अवधारणा विविध अप्रत्यक्ष करों को समेट कर चुनिंदा कर दायरों में लाने की थी ताकि इस जटिल व्यवस्था को सरल बनाया जा सके। कर जुटाने के लिहाज से अहम उत्पाद मसलन पेट्रोलियम, डीजल, शराब और बिजली अभी भी जीएसटी के दायरे से बाहर हैं।
- पूरे देश में एकसमान कर प्रणाली को लागू करना निस्संदेह देश को एक साझा बाजार में तब्दील करने की दिशा में उठाया गया आंदोलनकारी कदम है।
- रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म वह प्रस्तावित व्यवस्था है जिसमें जीएसटी के तहत पंजीकृत उन व्यापारियों को खुद टैक्स देना होगा जो गैर-पंजीकृत व्यापारियों से एक दिन में पाँच हजार या उससे अधिक का सामान या सेवाएँ हासिल करते है।
- सिंगापुर ने शुरुआत में जीएसटी की दर तीन फीसदी रखी थी। इस द्वीपीय देश में जीएसटी के 1994 में पहली बार लागू होने के बाद से कर की दर में बढ़ोतरी का यह चौथा मौका होगा।

## वस्तु एवं सेवा कर

- जीएसटी पूरे देश के लिए एक अप्रत्यक्ष कर है, जो भारत को एकीकृत साझा बाजार बना देगा। जीएसटी विनिर्माता से लेकर उपभोक्ता तक वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर एक एकल कर है। प्रत्येक चरण पर भुगतान किये गये इनपुट करों का लाभ मूल्य संवर्धन के बाद के चरण में उपलब्ध होगा, जो प्रत्येक चरण में मूल्य संवर्धन पर जीएसटी को आवश्यक रूप से एक कर बना देता है। अंतिम उपभोक्ताओं को इस प्रकार आपूर्ति श्रृंखला में अंतिम डीलर द्वारा लगाया गया जीएसटी ही वहन करना होगा। इससे पिछले चरणों के सभी मुनाफे समाप्त हो जायेंगे।
- जीएसटी एक मूल्य वर्धित कर है जो कि विनिर्माता से लेकर उपभोक्ता तक वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर एक एकल कर है। प्रत्येक चरण पर भुगतान किये गये इनपुट करों का लाभ मूल्य संवर्धन के बाद के चरण में उपलब्ध होगा जो प्रत्येक चरण में मूल्यो संवर्धन पर जीएसटी को आवश्यक रूप से एक कर बना देता है। अंतिम उपभोक्ताओं को इस प्रकार आपूर्ति श्रृंखला में अंतिम डीलर द्वारा लगाया गया जीएसटी ही वहन करना होगा।
- जीएसटी काउंसिल ने चार तरह के कर निर्धारित किये हैं, ये 5, 12, 18 एवं 28 प्रतिशत हैं, हालाँकि बहुत-सी चीजों को जीएसटी से छूट दी गई है। उन वस्तुओं पर कोई भी कर नहीं लगेगा या जीएसटी नहीं लगेगा जबकि लग्जरी एवं महँगे सामान पर जीएसटी के अलावा सेस भी लगेगा। सरकार के अनुसार इसमें से 81 प्रतिशत चीजें जीएसटी की 18 प्रतिशत की श्रेणी तक आएँगी।
- इससे केन्द्र एवम् विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भिन्न भिन्न दरों पर लगाए जा रहे विभिन्न करों को हटाकर पूरे देश के लिए एक ही अप्रत्यक्ष कर प्रणाली लागू की जाएगी जिससे भारत को एकीकृत साझा बाजार बनाने में मदद मिलेगी।
- एक मजबूत और व्यापक सूचना प्रौद्योगिकी प्रणाली भारत में जीएसटी व्यूवस्था की नींव होगी इसलिए पंजीकरण, रिटर्न, भुगतान आदि जैसी सभी कर भुगतान सेवाएँ करदाताओं को ऑनलाइन उपलब्ध होंगी, जिससे इसका अनुपालन बहुत सरल और पारदर्शी हो जायेगा।
- जीएसटी यह सुनिश्चित करेगा कि अप्रत्यक्ष कर दरें और ढाँचे पूरे देश में एकसमान हैं। इससे निश्चिंतता में तो बढ़ोतरी होगी ही व्यापार करना भी आसान हो जाएगा। दूसरे शब्दों में जीएसटी देश में व्यापार के कामकाज को कर तटस्थता बना देगा, फिर चाहे व्यापार करने की जगह का चुनाव कहीं भी की जाये।

- अप्रत्यक्ष करों पर गठित केलकर कार्यबल की रिपोर्ट में सर्वप्रथम इसके बारे में विचार-विमर्श किया गया था। 2003 में प्रत्यक्ष कर पर केलकर कार्यबल ने वैट सिद्धांत पर आधारित एक व्यापक वस्तु एवं सेवाकर (जीएसटी) का सुझाव दिया था।
- भारत के संघीय ढाँचे को ध्यान में रखते हुए जीएसटी के दो घटक होंगे- केन्द्रीय जीएसटी (सीजीएसटी) और राज्य जीएसटी (एसजीएसटी)। केन्द्र और राज्य दोनों एक साथ मूल्य श्रृंखला पर वस्तु और सेवा कर (जीएसटी) लगाएंगे।
- केन्द्र अंतर-राज्य कारोबार के मामले में संविधान के अनुच्छेद-269ए (1) के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं की अंतर-राज्य सभी सप्लाई पर एकीकृत वस्तु और सेवा कर (आईजीएसटी) लगाएगा और उसका संग्रह करेगा।
- देश में जीएसटी लागू करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों ने मिलकर वस्तु और सेवा कर नेटवर्क (जीएसटीएन) बनाया है। यह लाभ रहति गैर-सरकारी कंपनी के रूप में पंजीकृत है ताकि केन्द्र तथा राज्य सरकारों टैक्स देने वाले लोगों और अन्य हितधारकों के लिए साझा सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) अवसंरचना उपलब्ध कराई जा सके। जीएसटीएन का मुख्य उद्देश्य करदाताओं को मानक और एक समान इंटरफेस प्रदान करना है और केन्द्र तथा राज्य/केन्द्रशासित सरकारों के साथ अवसंरचना और सेवा साझा करना है।
- आवश्यक वस्तुओं जैसे कि दूध, लस्सी, दही, शहद, फल एवं सब्जियाँ, आटा, बेसन, ताजा मीट, मछली, चिकन, अंडा, ब्रेड, प्रसाद, नमक, बिंदी, सिंदूर, स्टांप, न्यायिक दस्तावेज, छपी पुस्तकें, समाचार-पत्र, चूड़ियाँ और हैंडलूम आदि वस्तुओं पर जीएसटी नहीं लगेगा। 20 लाख से कम की वार्षिक बिक्री वाले व्यापारियों को इस कर व्यवस्था से छूट दी गई है
- वस्तु एवं सेवाकर परिषद (जीएसटीसी) का गठन किया जाएगा जिसमें केंद्रीय वित्त मंत्री, राज्य मंत्री (राजस्व) और राज्यों के वित्त मंत्री होंगे। जिसमें 2/3 सदस्य राज्यों के होंगे और सभी निर्णय हेतु 75% मतों की आवश्यकता होगी। इस परिषद का कार्य जीएसटी की दर, इससे छूट और इसकी थ्रेशोल्ड सीमा, के बारे में सिफारिशें देना होगा। इसका कार्य यह भी होगा कि इसमें कौन-कौन से कर मिलाए जाएंगे, साथ ही यह इसकी अन्य विशेषताओं के बारे में भी बताएगा।

## PT / Mains - प्रश्न

### संभावित प्रश्न (प्रारंभिक परीक्षा)

1. वस्तु एवं सेवा कर के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत में इसे पारित करने वाला पहला राज्य असम है।
   2. भारत में यह कर-प्रणाली, कनाडा के मॉडल पर आधारित है।
   3. यह एक प्रत्यक्ष कर का उदाहरण है।

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) केवल 1 और 3
   (b) केवल 1 और 2
   (c) 1, 2 और 3
   (d) केवल 2 और 3

   (उत्तर-B)

2. वस्तु एवं सेवा कर के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत में इसे लागू करने का सुझाव विजय केलकर समिति ने दिया था।
   2. भारत में वस्तु एवं सेवा कर परिषद् के अध्यक्ष केन्द्रीय वित्त मंत्री होते हैं।

   उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

3. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के तहत् जीएसटी परिषद् का गठन किया गया है?
   (a) अनुच्छेद-279 (A)
   (b) अनुच्छेद-283
   (c) अनुच्छेद-267
   (d) अनुच्छेद-305

   (उत्तर-A)

4. वस्तु एवं सेवा कर के दायरे से बाहर रहने वाली मदें निम्नलिखित में से कौन-सी है/हैं?
   1. न्यायिक दस्तावेज
   2. शराब
   3. पेट्रोलियम वस्तुएँ
   4. बिजली

World Committed To Excellence

नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-

(a) केवल 1

(b) केवल 2

(c) केवल 4

(d) इनमें से कोई नहीं

(उत्तर-D)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

1. जीएसटी में केवल 20 लाख रुपये से अधिक का कारोबार करने वाले व्यक्ति या संस्थाएँ ही रिटर्न दाखिल करेंगी।
2. जीएसटी चोरी करने पर 5 वर्ष के लिए कारावास का प्रावधान है।

उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

(a) केवल 1

(b) केवल 2

(c) 1 और 2 दोनों

(d) न तो 1 और न ही 2

(उत्तर-C)

6. वस्तु एवं सेवा कर के लागू होने से छोटे एवं खुदरा व्यापारियों पर इसके प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. 'वस्तु एवं सेवा कर (GST- Goods and Services Tax)' के क्रियान्वित किए जाने का/के सर्वाधिक लाभ निम्नलिखित में से क्या है/हैं?

1. यह भारत में बहु-प्राधिकरणों द्वारा वसूल किए जा रहे बहुल करों का स्थान लेगा और इस प्रकार एकल बाजार स्थापित करेगा।
2. यह भारत के 'चालू खाता घाटे' को प्रबलता से कम कर उसके विदेशी मुद्रा भण्डार को बढ़ाने हेतु उसे सक्षम बनाएगा।
3. यह भारत की अर्थव्यवस्था की संवृद्धि और आकार को वृहद् रूप से बढ़ाएगा और उसे निकट भविष्य में चीन से आगे निकल जाने योग्य बनाएगा।

उपरोक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

(a) केवल 1

(b) केवल 2 और 3

(c) केवल 1 और 3

(d) 1, 2 और 3

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2017, उत्तर-A)

2. केन्द्र सरकार द्वारा सरकारी कामकाज के लिए करों एवं अन्य प्राप्तियों से प्राप्त सभी राजस्व राशि निम्नलिखित में से किस एक में जमा की जाती है?

(a) भारत की आकस्मिक निधि

(b) लोक खाता

(c) भारत की संचित निधि

(d) जमा एवं अग्रिम निधि

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2011, उत्तर-C)

3. एक टूथपेस्ट खरीदने में जो बिक्री-कर आप देते हैं, वह एक-

(a) केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित एक कर है।

(b) केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित लेकिन राज्य सरकार द्वारा संग्रहित एक कर है।

(c) राज्य सरकार द्वारा आरोपित लेकिन केन्द्र सरकार द्वारा संग्रहित एक कर है।

(d) राज्य सरकार द्वारा आरोपित एवं संग्रहित एक कर है।

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2014, उत्तर-D)

4. निम्नलिखित में से कौन-सा/से 13वें वित्त आयोग की सिफारिशों में ध्यान देने योग्य लक्षण है?

1. वस्तु एवं सेवा कर का एक ढाँचा और प्रस्तावित ढाँचे को अपनाने से संबंधित एक मुआवजा पैकेज।
2. भारत की जनसांख्यिकीय लाभांश के अनुसार, अगले दस वर्षों में लाखों रोजगार के सृजन का एक ढाँचा।
3. केन्द्रीय करों के एक निश्चित हिस्से का स्थानीय निकायों को अनुदान के रूप में हस्तांतरण।

नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-

(a) केवल 1

(b) केवल 2 और 3

(c) केवल 1 और 3

(d) 1, 2 और 3

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2012, उत्तर-A)

5. संविधान (एक सौ एक संशोधन) अधिनियम, 2016 के प्रमुख अभिलक्षणों को समझाइए। क्या आप समझते हैं कि यह ''करों के सोपानिक प्रभाव को समाप्त करने में और माल तथा सेवाओं के लिए साझा राष्ट्रीय बाजार उपलब्ध कराने में'' काफी प्रभावकारी है?

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2017)

6. भारत में वस्तु एवं सेवा कर (GST) प्रारंभ करने के मूलाधार की विवेचना कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2013)

GS World
Committed To Excellence

# बेलगाम होती जनसंख्या

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-1 ( भारतीय समाज ) से संबंधित है।*

**भारत की विशाल जनसंख्या के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं एवं चुनौतियों से निपटने की सरकार की क्या तैयारियाँ हैं? देश की उपलब्धियों को गौण कर देने वाली बढ़ती जनसंख्या का विस्फोट किस सीमा तक आत्मघाती होता जा रहा है? इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला', 'हिन्दुस्तान', 'राष्ट्रीय सहारा' तथा 'पत्रिका' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## चार दशक पहले बढ़ती जनसंख्या एक मुद्दा था, अब वह राजनीतिक दलों के एजेंडों से विलुप्त हो गया ( दैनिक जागरण )

अभी हाल में सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस सुधार संबंधी एक दशक से अधिक पुराने अपने फैसले की सुध ली। उसने केंद्र सरकार सहित सभी राज्य सरकारों को आदेश दिया कि वे कार्यवाहक पुलिस महानिदेशकों की नियुक्ति करने से बाज आएँ और पुलिस महानिदेशक पद पर किसी को नियुक्त करने के पहले शीर्ष पुलिस अधिकारियों की एक सूची संघ लोक सेवा आयोग को भेजें ताकि वह तीन नामों का एक पैनल बना सके। सुप्रीम कोर्ट के निर्देशानुसार केंद्र अथवा राज्यों को इसी पैनल में से ही कोई एक नाम पुलिस महानिदेशक के लिए चयनित करना होगा।

सुप्रीम कोर्ट की ओर से दी गई यह व्यवस्था एक तरह कार्यपालिका के काम में हस्तक्षेप है, लेकिन उसे उसके अधिकार क्षेत्र में इसलिए दखल देना पड़ा, क्योंकि न तो केंद्र सरकार पुलिस सुधारों के प्रति दिलचस्पी दिखा रही थी और न ही राज्य सरकारें। सुप्रीम कोर्ट को रह-रह कर ऐसे अनेक मसलों पर दखल देना पड़ता है जो मूलतः कार्यपालिका अथवा विधायिका के कार्य क्षेत्र के दायरे में आते हैं, एक अर्से से यह देखने में आ रहा है कि सरकारें जटिल सामाजिक एवं धार्मिक मसलों को सुलझाने से बचने में ही अपनी भलाई समझती हैं।

सरकारों का काम इसलिए और आसान हो गया हैं, क्योंकि विपक्षी दल भी इन मसलों पर मौन धारण रखना या फिर जैसा चल रहा है वैसा ही चलने देने के पक्ष में रहते हैं। यह किसी से छिपा नहीं कि तीन तलाक के मसले पर अधिकांश विपक्षी दलों का यही कहना था कि सरकार अथवा सुप्रीम कोर्ट को तो इस पचड़े में पड़ना ही नहीं चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट के पास जो तमाम सामाजिक मसले है उनमें तीन तलाक के बाद हलाला निकाह भी है और मुस्लिम महिलाओं के खतने की प्रथा पर रोक का मामला भी समलैंगिकता और जनसंख्या संबंधी मसले भी उसके समक्ष विचाराधीन है। यह ठीक है कि मोदी सरकार तत्काल तीन तलाक के खिलाफ खड़ी हुई, लेकिन यह स्पष्ट नहीं कि समलैंगिकता को अपराध मानने वाली धारा 377 पर उसका क्या रुख है? भले ही सुप्रीम कोर्ट समलैंगिकता को अपराध मानने के मसले पर सुनवाई कर रहा हो, लेकिन यह किसी से छिपा नहीं कि उसने ही दिल्ली उच्च न्यायालय के उस फैसले को पलटा था जिसमें धारा 377 को खारिज कर दिया गया था।

कहना कठिन है कि समलैंगिकता पर सरकार का क्या रुख होगा और सुप्रीम कोर्ट अपने फैसले को खारिज करेगा या नहीं, लेकिन उसके पास एक अन्य बड़ा सामाजिक मसला जनसंख्या का भी है। बढ़ती जनसंख्या एक गंभीर मसला है, लेकिन आज जब बढ़ती-घटती जनसंख्या दुनिया

## आबादी का सही नियोजन कैसे हो ( अमर उजाला )

आज से करीब तीन दशक पहले वर्ष 1989 में आज ही के दिन से विश्व की बढ़ती जनसंख्या को लेकर मंथन की शुरुआत हुई। इसी के मद्देनजर हर दस साल बाद हमारे मुल्क में जनगणना होती है। आबादी के आँकड़े ही केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा बनाई जाने वाली योजनाओं का प्रमुख आधार होते हैं। वर्ष 2011 की जनगणना ने बताया कि भारत की आबादी एक अरब 21 करोड़ है। वर्ष 2001 से 2011 के दरमियान 17.6 फीसदी की रफ्तार से 18 करोड़ आबादी बढ़ चुकी थी। ये साल 1991 से 2001 की 21.5 फीसदी की वृद्धि दर के मुकाबले करीब चार फीसदी कम थी, जो यकीनन राहत की बात है, लेकिन चुनौती यहीं खत्म नहीं होती।

भारत और चीन की आबादी का अंतर 10 साल में 23 करोड़ 80 लाख से घटकर 13 करोड़ 10 लाख हो चुका है। जानकार बता रहे हैं कि अगले छह साल में आबादी के मामले में हम चीन को पछाड़ देंगे। अगले 10-12 वर्षों में हमारी आबादी 1.5 अरब के पार हो जाएगी। यह तब है, जबकि 1,952 में परिवार नियोजन अभियान अपनाने वाला दुनिया का पहला देश भारत था। मगर आज दुनिया का दूसरा सबसे ज्यादा आबादी वाला मुल्क भारत है। हमारे हर सूबे की आबादी दुनिया के किसी मुल्क के बराबर है।

आबादी के लिहाज से उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है, जिसकी आबादी ब्राजील के बराबर है। वैसे ऐसा नहीं कि बढ़ती आबादी पर नीतियाँ नहीं बनीं या मंथन नहीं हुआ। बदलते वक्त में हालात कुछ सुधरे भी हैं। जागरूकता और बेहतर सुविधाओं के चलते शहरों में गाँवों के मुकाबले बेहतर हालात नजर आते हैं। शहरी इलाकों में जन्म दर सिर्फ 1.8 है, जबकि ग्रामीण इलाकों में 2.5 है। इसी तरह कम विकसित राज्यों के मुकाबले विकसित राज्यों में आबादी नियंत्रण के आँकड़े राहत देते हैं।

वैसे दिक्कत ज्यादा आबादी की नहीं, बल्कि उसके हिसाब से जरूरी संसाधनों के उपलब्ध न हो पाने की है। दुनिया की 17 फीसदी से ज्यादा आबादी हमारी है, जबकि दुनिया का केवल चार फीसदी पानी और 2.5 फीसदी जमीन ही हमारे पास है। समझा जा सकता है कि चुनौती कितनी बड़ी है। करोड़ों भारतीय जिंदगी की बुनियादी जरूरतों तक से महरूम हैं।

जाहिर है हालात बेहद गंभीर हैं, लेकिन आबादी को लेकर सियासत भी जारी है। इस बीच, कुछ राज्यों ने अनोखी पहल भी की। योगी आदित्यनाथ ने नवविवाहित जोड़ों के लिए शगुन योजना की शुरुआत की। असम में दो से ज्यादा बच्चे वालों को सरकारी नौकरी न मिलने की नीति बनी, तो गुजरात में दो से ज्यादा बच्चों के अभिभावकों के पंचायत चुनाव लड़ने पर रोक लगी। लेकिन बढ़ती आबादी को लेकर ढेरों सवाल अब भी कायम हैं। जैसे, क्या बढ़ती आबादी की बड़ी वजह अशिक्षा और पिछड़ापन रहा है? अगर हाँ, तो बढ़ती आबादी को धर्म और जाति के चश्मे से क्यों देखा जाता है?

के अनेक देशों में एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है तब किसी को नहीं पता कि भारत में सत्तापक्ष या विपक्ष का इस मसले पर क्या कहना है?

यह हैरानी की बात है कि करीब चार दशक पहले बढ़ती जनसंख्या तो एक मुद्दा थी, लेकिन आपातकाल में जबरन नसबंदी अभियान के बाद राजनीतिक दलों एवं अन्य नीति-नियंताओं के एजेंडे से यह मसला, ऐसे बाहर हुआ कि फिर किसी ने उसकी सुध नहीं ली। क्या यह अजीब नहीं कि 43 साल पहले 1975 में जब भारत की आबादी 55-56 करोड़ थी तब तो बढ़ती जनसंख्या एक गंभीर मसला थी, लेकिन आज जब वह बढ़कर 130 करोड़ से अधिक हो गई है तब कोई भी उसके बारे में न तो चर्चा करता है और न ही चिंता?

इसमें दोराय नहीं कि इंदिरा गांधी ने आपातकाल थोपकर बहुत बुरा किया, लेकिन इससे भी बुरा यह हुआ कि उस दौरान जनसंख्या नियंत्रण के जबरन तौर-तरीकों ने राजनीतिक दलों को इतना भयभीत कर दिया कि उन्होंने जनसंख्या विस्फोट से आँखें ही मूंद लीं। हालत यह हुई कि जनसंख्या नियंत्रण विभाग का नाम ही बदलकर परिवार नियोजन कर दिया गया। नए नाम वाले इस विभाग ने अपनी सारी ऊर्जा गर्भ निरोधक उपायों के प्रचार-प्रसार में लगा दी और इस तरह जनसंख्या नियंत्रण का मसला सदैव के लिए नेपथ्य में चला गया। ऐसा तब हुआ जब भारत दुनिया का पहला देश था जिसने बढ़ती जनसंख्या की समस्याओं का संज्ञान लिया और 1952 में ही आबादी नियंत्रण का राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया। चूँकि भारत ऐसा करने वाला पहला देश बना इसलिए दुनिया के उन देशों ने भी हमसे सीख ली जहाँ जनसंख्या तेजी के साथ बढ़ रही थी।

इसका कोई मतलब नहीं कि हम हर साल जून में आपातकाल की याद करें, लेकिन यह भूल जाएं कि कैसे इस काले कालखंड ने एक जरूरी राष्ट्रीय कार्यक्रम को हमेशा के लिए पटरी से उतार दिया? यह सही है कि आपातकाल के दौरान संजय गांधी की सनक के चलते जनसंख्या नियंत्रण का अभियान एक दहशत बन गया था, लेकिन जरूरत इस दहशत को खत्म करने की थी, न कि इस जरूरी अभियान को विस्मृत कर देने की। हमारे नेताओं ने दहशत खत्म करने के नाम पर एक उपयोगी राष्ट्रीय कार्यक्रम को एक तरह से ठंडे बस्ते में डाल दिया। इसका ही यह दुष्परिणाम हैं कि भारत आबादी के मामले में जल्द ही चीन को पछाड़ने वाला है।

आज जैसा माहौल है उसमें अगर कोई राजनीतिक दल और खासकर सत्तारूढ़ दल जनसंख्या नियंत्रण की जरूरत भी जताए तो उसे जनविरोधी करार देने में समय नहीं लगेगा। दुनिया के अन्य देशों की तरह हम भी 11 जुलाई को जनसंख्या दिवस मनाते हैं, लेकिन इस दौरान महज रस्म अदायगी ही होती है। सभा-संगोष्ठी में चर्चा-परिचर्चा करके यह मान लिया जाता है कि जनता को बेलगाम बढ़ती जनसंख्या के खतरों से अच्छी तरह आगाह कर दिया गया। निःसंदेह पढ़ा-लिखा तबका परिवार नियोजन की महत्ता से परिचित है, लेकिन अनपढ़-निर्धन तबका इसके प्रति सचेत नहीं कि जरूरत से ज्यादा बड़ा परिवार मुसीबत की जड़ है।

भला हो सुप्रीम कोर्ट का कि उसने सरकार की ओर से जनसंख्या नियंत्रण की कोई प्रभावी नीति बनाए जाने की माँग वाली याचिकाओं को मंजूर कर लिया है, लेकिन उसे ऐसा कोई फैसला भी देना होगा जिससे अभीष्ट की पूर्ति हो। और भी बेहतर होगा कि वह राजनीतिक दलों को यह हिदायत भी दे कि वे फालतू के मसलों पर तू तू- मैं मैं करने के बजाय समाज और देश की चिंता करना सीखें।

इसमें संदेह है कि सुप्रीम कोर्ट राजनीतिक दलों को ऐसी कोई हिदायत देगा और यदि देगा भी तो उनकी सेहत पर कोई असर पड़ेगा, लेकिन इसमें दोराय नहीं कि वे जनहित से जुड़े मसलों पर चर्चा करने से कन्नी ही अधिक काटते हैं। ऐसा करके वे न केवल सच का सामना करने से इन्कार करते हैं, बल्कि अपने स्वार्थी रवैये का परिचय देते हैं।

राज्यों की नीतिगत विफलताओं का दोष समाज के मत्थे क्यों मढ़ा जाता है? बढ़ती आबादी पर सियासी घमासान क्यों है? क्या आबादी पर काबू के लिए सख्त कानून की दरकार है?बेहतर हो नीति-निर्माता और समाज मिलकर महिला साक्षरता और स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता कार्यक्रमों पर जोर दें, ताकि लोग परिवार नियोजन से जुड़े सही फैसले ले सकें और आबादी उपलब्धि साबित हो न कि बोझ!

## जलवायु संकट का एक पहलू है आबादी ( हिन्दुस्तान )

कहा जाता है कि मानव आबादी वर्ष 1350 में ब्लैक डैथ (प्लेग) के बाद लगातार बढ़ी है। जनसंख्या वृद्धि 1350 के बाद शुरू हुई और उसका कारण था बेहतर स्वास्थ्य व अधिक खाद्य उत्पादन। इसकी वृद्धि दर वर्ष 1980 के बाद घटी पर पूर्णांक संख्या फिर भी बढ़ी ही है। एक हालिया शोध ने ये बताया है कि 5 जुलाई, 2018 को 763.4 करोड़ लोग धरती पर हैं। यह भी माना जाता है कि पृथ्वी पर चार अरब लोग बेहतर जीवन जी सकते हैं और यह धरती 16 अरब से ज्यादा आबादी का भार नहीं ढो सकती, यानी यह उसकी अंतिम सीमा है। यह भी माना जा रहा है कि जनसंख्या वर्ष 2040-50 तक आठ से 10.5 अरब तक पहुँच जायेगी। क्योंकि प्रति वर्ष 7.4 करोड़ लोग धरती पर बढ़ते जा रहे है। दुनिया में 7 देश ऐसे हैं जिनके कारण वर्ष 2050 तक आधी आबादी का कारवाँ होगा।

हमारी धरती पर कितनी आबादी होनी चाहिए यह चर्चा बहुत पुरानी है। प्राचीन लेखक तेर्तुल्लियन ने दूसरी सदी में ये कहा था कि आबादी पृथ्वी की क्षमताओं के अनुसार ही होनी चाहिये। यह भी बड़ी अजीब-सी बात है कि 750 साल पहले मतलब उद्योग क्रांति से भी पहले दुनिया की संख्या बहुत धीमी गति से बढ़ती थी परंतु 19वीं सदी में आते-आते यह संख्या अरबों में पहुँच गई। 18वीं सदी की इसी उद्योग क्रांति के बाद जनसंख्या वृद्धि भी हुई और साथ में प्राकृतिक संसाधनों का शोषण भी हुआ। इस सदी के अंत में जहाँ जनसंख्या अरब थी वो 20वीं सदी में आते आते 1.6 अरब हो गई और 20वीं सदी के अंत तक छह अरब पर पहुँच गई। वैसे थॉमस मॉल्थस जैसे विद्वान ने कभी यह भविष्यवाणी की थी कि मानव जाति संसाधनों की तुलना में कई गुना बढ़ जायेगी।

यह पृथ्वी कितनी आबादी का भारत ढो सकती है। यह बहस भले ही सदियों से चल रही हो लेकिन 1994 से इसके विश्लेषण भी शुरू हो गए। तब इंटर ऐकेडमिक पैनल ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि इसके कारण पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण जैसे मुद्दे खड़े होंगे। यूनाइटेड नेशन पॉपूलेशन असेंसमेंट की वर्ष 2004 की रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक जनसंख्या स्थिर हो जाएगी। पर 2014 में साइंस मैगजीन ने इसका खंडन करते हुए बताया कि यह जनसंख्या वृद्धि अगली सदी तक चलेगी। वर्ष 2017 में ही 50 नोबेल पुरस्कार विजेताओं ने सामूहिक रूप से एक पेटीशन में कहा कि अधिकतम मानव जनसंख्या और पर्यावरणीय क्षति दुनिया के दो बड़े खतरे बन चुके हैं। और इसी वर्ष 184 देशों के 15364 वैज्ञानिको ने माना कि बढ़ती जनसंख्या ही बिगड़ती सामाजिक, आर्थिक व पारिस्थितिकीय का कारण है।

पर आबादी कभी बहस का बड़ा मुद्दा नहीं बन पाती, क्योंकि इससे कई चीजें जुड़ी हुई है। जनसंख्या के आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक पहलू जब भी चर्चा में आते हैं तो कई तरह के विवादों में अटक जाते हैं। हम जनसंख्या पर चर्चा से क नहीं कतरा सकते क्योंकि स्थिति लगातार विस्फोटक होती जा रही है। खासतौर से जब दुनिया के हर तीसरे व्यक्ति को भरपेट भोजन नहीं हासिल होता है। आधी आबादी के सर पर अपनी छत नहीं है, स्वास्थ्य सेवाएँ मात्र 30-40 प्रतिशत लोगों तक ही पहुँचती हैं। इसी के चलते गाँवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ा है।

Committed To Excellence

## चैन उड़ाती बढ़ती आबादी (राष्ट्रीय सहारा)

प्रति वर्ष विश्व समुदाय ग्यारह जुलाई को विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में मनाता है। यह दिन विश्व के तमाम लोगों को जनसंख्या से संबंधित मुद्दों और समस्याओं के प्रति संकल्पबद्ध होने का अवसर होता है। 1989 में यूनाइटेड नेशंस डवलपमेंट प्रोग्राम की गवर्निंग काउंसिल ने सिफारिश की थी कि प्रति वर्ष ग्यारह जुलाई को विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में मनाया जाना चाहिए। इस पहल के प्रथम वर्ष में ही विश्व के करीब 90 देशों ने शिरकत की थी। इस बार आयोजन की थीम है, परिवार नियोजन मानवाधिकार है। भारत, परिवार कल्याण कार्यक्रमों में 1952 से ही अग्रणी भूमिका में रहा है। 2018 के आँकड़ों के मुताबिक, भारत विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या (करीब 135 करोड़) वाला देश है। चीन पहले स्थान पर है। भारत के बाद क्रमशः अमेरिका, इंडोनेशिया, ब्राजील, पाकिस्तान, नाइजीरिया, बांग्लादेश, रूस और जापान का स्थान है। भारत की आबादी में करीब 32 प्रतिशत लोग शहरी (2016 में 429,802,441) हैं। 1991 तक उत्तर-पूर्व क्षेत्रों में सबसे कम जनसंख्या घनत्व था, जबकि दक्षिणी क्षेत्र में सर्वाधिक था। तदोपरांत पूर्वी क्षेत्र देश में सर्वाधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र के रूप में उभरा। 2001-2011 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 17.6 प्रतिशत थी, जबकि 1971-81 में 25 प्रतिशत थी। स्वास्थ्य मानव विकास का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने से पिछले कुछ दशकों में संक्रामक रोगों में कमी आई है। लोगों के स्वास्थ्य में सुधार और मृत्यु दर में गिरावट दर्ज की गई है। आईसीएमआर की हालिया रिपोर्ट के मुताबिक गैर-संक्रामक रोग खासे बढ़े हैं। बाल मृत्यु दर में वृद्धि चुनौती बनी हुई है। जीवन प्रत्याशा बढ़ी है। आजादी के समय यह 40 वर्ष से कम थी, जो बढ़कर 68.5 वर्ष (2016 में) हो गई है। पुरुषों के मामले में यह 67.3 वर्ष, जबकि महिलाओं में 69.8 वर्ष है। इस प्रकार मानवीय स्वास्थ्य मानवाधिकारों से बेहद करीबी से जुड़ा मसला है। भारत विश्व का सर्वाधिक युवा देश है। यहाँ की जनसंख्या में 10-24 वर्ष के आयु वर्ग में 35 करोड़ साठ लाख लोग हैं। जनसंख्या दिवस के मौके पर हमें युवाओं का स्वस्थ भारत के निर्माण खासकर परिवार नियोजन मानवाधिकार है, थीम को रूपाकार करने के लिए ज्यादा से ज्यादा उपयोग के प्रति संकल्पबद्ध होना चाहिए। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी युवा जनसंख्या को देश की पूंजी बनाने की दिशा में प्रयासरत हैं। देश की कुल जनसंख्या का 46 प्रतिशत हिस्सा 24 वर्ष से कम आयु वर्ग के लोगों का है। जरूरी है कि युवा जनसंख्या को कार्यबल की मुख्यधारा में लाने की पहल की जाए ताकि वह देश के लिए महत्त्वपूर्ण संसाधन साबित हो सके। इस दिशा में मेक इन इंडिया, स्किल्ड इंडिया, स्टार्ट-अप, स्टैंड-अप इंडिया आदि विभिन्न विकासात्मक योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही हैं। अल्पविकास अनेक रूपों में दिखलाई पड़ता है। बाल श्रम, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और उनका यौन शोषण जैसी कुछेक समस्याएँ हैं। बाल श्रम की जहाँ तक बात है, तो इस समस्या से तीन तरह से निपटा जा सकता है। संकटग्रस्त परिवार को आर्थिक समर्थन मुहैया कराया जाए, समूची शिक्षा प्रणाली को चाक-चौबंद किया जाए। स्लम इलाकों में सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ खराब होने के चलते बच्चों को पैसा कमाने के लिए बालपन में ही जूझना पड़ जाता है। किशोरवय की लड़कियों को समाजगत परेशानियों तथा विवाह के लिए दान-दहेज आदि के लिए पैसा जुटाने में माता-पिता की आर्थिक मदद करने की चुनौतियों से जूझना पड़ता है। इस क्रम में वे स्कूल तक नहीं जा पातीं। बालपन में विवाह कर दिए जाने से लड़कियों को स्वास्थ्य संबंधी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। उनके मामले में घरेलू हिंसा, मातृ तथा शिशु मृत्यु की आशंका पैदा हो जाती है। महिला सशक्तीकरण जरूरी है। यदि महिलाओं

इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि अगर एक हेक्टेयर खेती 22 टन ही धान पैदा कर सकती है और उससे 1000 लोगों का ही पेट भर सकता है तो आगे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसके साथ ही हमें बाकी प्राणियों के बारे में भी सोचना होगा। एक रिपोर्ट के अनुसार 1.4 लाख प्रजातियाँ धरती से विलुप्त होने की कगार पर हैं। जिनमें से 801 वन्यजीव भी शामिल हैं। वर्ल्डवाइड फंड फॉर नेचर की एक रिपोर्ट के अनुसार- आबादी अगर इसी रफ्तार से बढ़ती रही तो हमें डेढ गुना बड़ी पृथ्वी की आवश्यकता पड़ेगी। दूसरी तरफ बढ़ती जनसंख्या के कारण साफ पेयजल की उपलब्धता पर सीधा असर पड़ा है। बढ़ता वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मिट्टी व ध्वनि प्रदूषण सीधा बढ़ती जनसंख्या के कारण है।

वर्ष 1970 से लेकर वर्ष 2015 के बीच में उर्जा के उपभोग में कई गुना बढ़ोतरी हुई है। मतलब 1970 में अगर उर्जा के उपयोग को शून्य मान लें तो 2010 में ये 150 गुना बढी वा 2025 तक आते-आतें ये 250 गुना हो जाएगी और इसके लिये हद से ज्यादा प्रकृति का शोषण होगा। हम जानते हैं कि दुनिया में बाल व शिशु मृत्यु दर बढ़ती गरीबी के कारण है। भुखमरी, कुपोषण व नई नई बीमारियों को सीधे-सीधे बढ़ती जनसंख्या से जोड़ा जा सकता है। दिक्कत यह है कि दुनिया में कुपोषित और अल्पपोषित लोगों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। हालत यहाँ तक पहुँच गई है कि ब्रिटेन जैसे सक्षम देश को अपनी आबादी के लिये खाद्य पदार्थों का आयात करना पड़ता है। लेकिन हर देश के लोग इतने खुशकिस्मत नहीं हैं, जिन देशों की आर्थिक स्थिति इतीन अच्छी नहीं हैं कि वे बड़ी मात्रा में आयात कर सकें वहाँ लोग कुपोषण और अल्पपोषण के शिकार हैं।

अगर जनसंख्या की यही गति रही तो यह तो तय है कि अन्न से लेकर पानी और प्राणवायु तक सब पर बड़ा संकट आएगा। आज भी इन सभी संसाधनों पर पड़ने वाला दबाव साफ देखा जा सकता है। यह सब पिछले दो दशकों में ज्यादा गहरा हुआ है तो कल्पना की जा सकती है कि अगले 2-3 दशकों में परिस्थितियाँ कहाँ पहुँच जाएंगी। हमें बढ़ती जनसंख्या पृथ्वी की क्षमताओं और वर्तमान परिस्थितियों पर बड़ी और निर्णायक चर्चा अब करनी ही होगी। वर्ना यह दुनिया पहले संसाधनों के संकट और फिर उनके लिए युद्ध की ओर बढ़ेगी।

## बेकाबू होती आबादी (पत्रिका)

भारत में अनेक गंभीर समस्याएँ हैं। गरीबी, भ्रष्टाचार, सुशासन की समस्या, सामाजिक और धार्मिक विवाद इत्यादि। ऐसे में, जनसंख्या को लेकर इतना अधिक चिंतित होने की क्या जरूरत है? इस सवाल का सीधा-सा जवाब यह है कि इन तमाम समस्याओं का संबंध घूम-फिर कर देश में तेज गति से बढ़ रही जनसंख्या से ही जुड़ा हुआ है।

राष्ट्रीय संसाधनों का बहुत बड़ा हिस्सा देश की विशाल आबादी के भरण-पोषण पर खर्च हो जाता है, जबकि इन संसाधनों का उपयोग निवेश और उत्पादकता को बढ़ाने, इनकी गुणवत्ता में सुधार के लिए किया जा सकता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सुरक्षित पेयजल आदि सार्वजनिक सेवाओं को व्यापक स्तर पर उपलब्ध कराया जा सकता है। तेज रफ्तार से बढ़ रही आबादी देश के समग्र विकास पर असर डाल रही है। जनसंख्या के बढ़ने की वर्तमान गति को रोक कर इसे स्थिर किए बिना, भारत अपनी वर्तमान समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता।

भारत की जनसांख्यिकी को देखकर दिमाग चकरा जाता है। वर्ष 1947 में भारत की आबादी 33 करोड़ थी। यह मार्च 2018 में 135 करोड़ हो चुकी है। पिछले सत्तर सालों में यह चार गुना बढ़ोतरी है। दुनिया की कुल आबादी में अब भारत की हिस्सेदारी 17.8 प्रतिशत हो गई है। यानी दुनिया का हर छठा व्यक्ति भारतवासी है। चीन ही एकमात्र देश है, जिसकी

का किशोरवय में सशक्तीकरण किया जाए तो वे सफलता के सोपान चढ़ सकती हैं। अपने समुदायों में सकारात्मक बदलाव ला सकती हैं। भारत और 178 देशों ने 1994 में काहिरा इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन पॉपुलेशन एंड डवलपमेंट में इस बात पर बल दिया था कि स्वैच्छिक परिवार नियोजन का प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। भारत समेत विकासशील देशों में 21 करोड़ पचास लाख महिलाएँ हैं, जो बच्चे को जन्म देने में विलंब करने की इच्छुक हैं, या गर्भधारण नहीं चाहतीं। लेकिन इस बाबत अधिकारों का आधुनिक गर्भनिरोधकों की जानकारी के अभाव में इस्तेमाल नहीं कर पातीं। भारत के लिए यह कोई उत्साहजनक स्थिति नहीं है कि अभी भी उसकी जनसंख्या वृद्धि दर ऊँची है। ग्रामीण इलाकों में अभी भी बच्चों को आजीविका अर्जित करने में सहायक परिजन के रूप में माना जाता है। ज्यादा बच्चे पैदा करके माँ-बाप अपनी वृद्धावस्था की ''असहायता'से बचे रहना चाहते हैं। भारत का विश्व के कुल क्षेत्रफल में 2.4 प्रतिशत हिस्सा है, जबकि विश्व की कुल जनसंख्या में उसका 17.84 प्रतिशत हिस्सा है। विश्व में किसानों की कुल संख्या का 15 प्रतिशत भारत में है। विश्व में कुल वन क्षेत्रका आधा प्रतिशत भारत में है। ताजे जल का मात्र 4 प्रतिशत भारत में उपलब्ध है। इसलिए भारत में जनसंख्या-संसाधन अनुपात असंतुलित है। जनसंख्या बढ़ने का अर्थ है संसाधनों का कम पड़ते जाना। फलस्वरूप समाज में तनाव पैदा होने की आशंका उठ खड़ी होती है। इसलिए जरूरी है कि युवा जनसंख्या को स्किल इंडिया, मेक इन इंडिया, स्टार्ट-अप इंडिया के माध्यम से प्रशिक्षित किया जाए ताकि देश को गुणवत्तापूर्ण संसाधन उपलब्ध हो सकें। जरूरी है कि पारंपरिक पाठ्यक्रमों के स्थान पर खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, जल सुरक्षा, जलवायु सुरक्षा, जैव विविधता, आपदा प्रबंधन, लैंगिक एवं मानवीय स्वास्थ्य जैसे विषयों संबंधी पाठयक्रमों पर केंद्रित हुआ जाए। भारत के लिए जरूरी है कि स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कौशल विकास जैसे क्षेत्रों में खासा निवेश किया जाए। खासकर युवाओं की संख्या का ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाने के लिए इस दिशा में प्रयास किए जाने जरूरी है। दक्षिण कोरिया, जापान, सिंगापुर तथा मलेशिया जैसे देशों ने इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की है। जहाँ तक भारत की बात है तो स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन के लिए जीडीपी का मात्र 1.3 प्रतिशत व्यय किया जाता है। युवा शक्ति की उपेक्षा से सामाजिक असंतोष का खतरा है।

जनसंख्या भारत से ज्यादा है। यह महज सात करोड़ ही अधिक जबकि 1990 में यह भारत की जनसंख्या से 30.2 करोड़ अधिक थी।

भारत की जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2010-15 के दौरान 1.24 प्रतिशत प्रति वर्ष रही है, जबकि इसी अवधि में चीन में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 0.61 प्रतिशत दर्ज की गई। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या विभाग का अनुमान है कि 2030 में भारत की आबादी चीन की आबादी से अधिक हो जाएगी। जनसंख्या वृद्धि दर पर आधारित इस अनुमान के अनुसार 2030 में भारत की जनसंख्या 147.6 करोड़ से अधिक हो जाएगी, जबकि चीन की जनसंख्या के बारे में अनुमान है कि यह उस समय 145.3 करोड़ सर्वोच्च स्थिति में पहुँचने के बाद कम होना शुरू हो जाएगी।

हाल के आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर तो यह कहा जा सकता है कि भारत की जनसंख्या वर्ष 2023 में ही चीन से अधिक हो जाएगी। जनसंख्या नियंत्रण के प्रयासों को देखते हुए क्या यह आशा की जा सकती है कि भारत की जनसंख्या भी निकट भविष्य में कम होना शुरू हो जाएगी? वास्तविकता यह नहीं है। हकीकत यह है कि भारत की जनसंख्या अभी और बढ़ेगी। वर्ष 2060 तक हमारी आबादी करीब 170 करोड़ के आस-पास होगी। इसका मुख्य कारण भारत की जनसंख्या में युवकों की बड़ी संख्या है। जनसंख्या के लगातार बढ़ने को जनसांख्यिकीय गति कहा जाता है। 2011 की जनगणना के अनुसार, देश की जनसंख्या में से 31 प्रतिशत की आयु 0-14 वर्ष थी। ऐसे में आबादी का घट कर एक अरब पर आना नामुमकिन है।

भारत में जनसंख्या वृद्धि का बड़ा कारण अनचाहा गर्भ है। हर दस जीवित शिशुओं में से लगभग पाँच बच्चे अनचाहे या अनियोजित होते हैं। अवांछित गर्भ के परिणाम व्यापक कुपोषण, खराब स्वास्थ्य, शिक्षा की निम्न गुणवत्ता, भोजन-पानी और आवास जैसे बुनियादी संसाधनों की कमी के रूप में देखे जा सकते हैं। वर्ष 2017 में कुल 2.6 करोड़ बच्चे पैदा हुए थे। इनमें 1.3 करोड़ प्रसव अवांछित के रूप में वर्गीकृत किए जा सकते हैं।

इसके अलावा, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षणों के आधार पर अनुमान है कि भारत में 2017 में लगभग 135 करोड़ में से 43 करोड़ लोग अवांछित गर्भ का परिणाम थे। देश में लगभग 1.3 करोड़ ऐसी महिलाएँ हैं जो और बच्चे नहीं चाहतीं। इन महिलाओं को आधुनिक गर्भ निरोधक उपाय सुलभ नहीं हो पा रहे हैं। गर्भनिरोधकों की कमी, स्टॉक खत्म होना, अनुपलब्धता या डॉक्टरों और चिकित्सीय सहायकों की अनुपलब्धता जैसी गंभीर समस्याएँ इसका कारण हैं। ऐसे में महिलाएँ खुद को अवांछित व अनियोजित गर्भ तथा यौन संक्रमण से सुरक्षित रखने में असमर्थ पाती हैं। परिवार नियोजन की अपूर्ण स्थिति जनसंख्या वृद्धि दर में जल्द कमी की संभावनाओं को कमजोर कर देती है।

अवांछित गर्भधारण पूरी तरह से तो खत्म नहीं किया जा सकता, पर एक दशक में इन पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है। इसके लिए नवविवाहित जोड़ों को आवश्यकता अनुसार परिवार नियोजन सेवाएँ सहज उपलब्ध करानी होंगी। नब्बे के दशक के दौरान आंध्र प्रदेश ने इसका बेहतर उदाहरण प्रस्तुत किया। यदि आंध्र प्रदेश ने अपनी जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित किया है तो कोई वजह नहीं है कि अन्य राज्य खास तौर से उत्तर भारत के चार बड़े राज्य बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश ऐसा नहीं कर सकते?

भारत को गर्भ निरोध के उपायों के माध्यम से यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हर दंपती की इच्छा और चाह के अनुसार ही बच्चे हों। इसे केंद्र में रखकर परिवार नियोजन कार्यक्रम को पुनर्गठित करने की जरूरत है। भारत की जनसंख्या स्थिर करने में नाकामयाबी का गंभीर परिणाम देश के विकास और भविष्य पर होगा।

## सारांश

- भारत दुनिया का पहला देश था जिसने बढ़ती जनसंख्या की समस्याओं का संज्ञान लिया और 1952 में ही आबादी नियंत्रण का राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया। चूँकि भारत ऐसा करने वाला पहला देश बना इसलिए दुनिया के उन देशों ने भी हमसे सीख ली, जहाँ जनसंख्या तेजी के साथ बढ़ रही थी।
- वर्ष 2011 की जनगणना ने बताया कि भारत की आबादी एक अरब 21 करोड़ है। वर्ष 2001 से 2011 के दरमियान 17.6 फीसदी की रफ्तार से 18 करोड़ आबादी बढ़ चुकी थी। ये साल 1991 से 2001 की 21.5 फीसदी की वृद्धि दर के मुकाबले करीब चार फीसदी कम थी
- भारत और चीन की आबादी का अंतर 10 साल में 23 करोड़ 80 लाख से घटकर 13 करोड़ 10 लाख हो चुका है। जानकार बता रहे हैं कि अगले छह साल में आबादी के मामले में हम चीन को पछाड़ देंगे। अगले 10-12 वर्षों में हमारी आबादी 1.5 अरब के पार हो जाएगी।
- 1952 में परिवार नियोजन अभियान अपनाने वाला दुनिया का पहला देश भारत था। आबादी के लिहाज से उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है, जिसकी आबादी ब्राजील के बराबर है। शहरी इलाकों में जन्म दर सिर्फ 1.8 है, जबकि ग्रामीण इलाकों में 2.5 है।
- विश्व बैंक के मुताबिक, करीब 22 करोड़ लोग हमारे मुल्क में गरीबी रेखा के नीचे हैं। मुल्क की 15 फीसदी आबादी कुपोषण का शिकार है। बच्चों में कुपोषण की दर 40 फीसदी है। 65 फीसदी आबादी के पास शौचालय तक नहीं है, जबकि 26 फीसदी आबादी निरक्षर है। जिस देश में हर साल 1.2 करोड़ लोग रोजगार के बाजार में आते हों, वहाँ रोजगार बड़ी चुनौती बन चुका है।
- प्रति वर्ष विश्व समुदाय ग्यारह जुलाई को विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में मनाता है। यह दिन विश्व के तमाम लोगों को जनसंख्या से संबंधित मुद्दों और समस्याओं के प्रति संकल्पबद्ध होने का अवसर देता है। 1989 में यूनाइटेड नेशंस डवलपमेंट प्रोग्राम की गवर्निंग काउंसिल ने सिफारिश की थी कि प्रति वर्ष ग्यारह जुलाई को विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में मनाया जाना चाहिए। इस पहल के प्रथम वर्ष में ही विश्व के करीब 90 देशों ने शिरकत की थी।
- इस बार आयोजन की थीम है, परिवार नियोजन मानवाधिकार है।
- 2018 के आँकड़ों के मुताबिक, भारत विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या (करीब 135 करोड़) वाला देश है। चीन पहले स्थान पर है। भारत के बाद क्रमशः अमेरिका, इंडोनेशिया, ब्राजील, पाकिस्तान, नाइजीरिया, बांग्लादेश, रूस और जापान का स्थान है।
- भारत की आबादी में करीब 32 प्रतिशत लोग शहरी (2016 में 429,802,441) हैं। 1991 तक उत्तर-पूर्व क्षेत्र में सबसे कम जनसंख्या घनत्व था, जबकि दक्षिणी क्षेत्र में सर्वाधिक था। तदोपरांत पूर्वी क्षेत्र देश में सर्वाधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र के रूप में उभरा। 2001-2011 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 17.6 प्रतिशत थी, जबकि 1971-81 में 25 प्रतिशत थी। जीवन प्रत्याशा बढ़ी है। आजादी के समय यह 40 वर्ष से कम थी, जो बढ़कर 68.5 वर्ष (2016 में) हो गई है। पुरुषों के मामले में यह 67.3 वर्ष, जबकि महिलाओं में 69.8 वर्ष है।
- भारत विश्व का सर्वाधिक युवा देश है। यहाँ की जनसंख्या में 10-24 वर्ष के आयु वर्ग में 35 करोड़ साठ लाख लोग हैं। हैं। देश की कुल जनसंख्या का 46 प्रतिशत हिस्सा 24 वर्ष से कम आयु वर्ग के लोगों का है।
- भारत और 178 देशों ने 1994 में काहिरा इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन पॉपुलेशन एंड डवलपमेंट में इस बात पर बल दिया था कि स्वैच्छिक परिवार नियोजन प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है।
- भारत का विश्व के कुल क्षेत्रफल में 2.4 प्रतिशत हिस्सा है, जबकि विश्व की कुल जनसंख्या में उसका 17.84 प्रतिशत हिस्सा है। विश्व में किसानों की कुल संख्या का 15 प्रतिशत भारत में हैं। विश्व में कुल वन क्षेत्र का आधा प्रतिशत भारत में है। ताजे जल का मात्र 4 प्रतिशत भारत में उपलब्ध है।
- कहा जाता है कि मानव आबादी वर्ष 1350 में ब्लैक डैथ (प्लेग) के बाद लगातार बढ़ी है। जनसंख्या वृद्धि 1350 के बाद शुरू हुई और उसका कारण था बेहतर स्वास्थ्य व अधिक खाद्य उत्पादन। इसकी वृद्धि दर वर्ष 1980 के बाद घटी पर पूर्णांक संख्या फिर भी बढ़ी ही है।
- एक हालिया शोध ने ये बताया है कि पाँच जुलाई 2018 को 763.4 करोड़ लोग धरती पर है। यह भी माना जाता है कि पृथ्वी चार अरब लोग बेहतर जीवन जी सकते हैं और यह धरती 16 अरब से ज्यादा आबादी का भार नहीं ढो सकती, यानी यह उसकी अंतिम सीमा है। यह भी माना जा रहा है कि जनसंख्या वर्ष 2040-50 तक आठ से 10.5 अरब तक पहुँच जायेगी। क्योंकि प्रति वर्ष 7.4 करोड़ लोग धरती पर बढ़ते जा रहे है। दुनिया में 7 देश ऐसे हैं जिनके कारण वर्ष 2050 तक आधी आबादी का कारवां होगा।
- 750 साल पहले मतलब उद्योग क्रांति से भी पहले दुनिया की संख्या बहुत धीमी गति से बढ़ती थी परंतु 19वीं सदी में आते आते यह संख्या अरबों में पहुँच गई। 18वीं सदी की इसी उद्योग क्रांति के बाद जनसंख्या वृद्धि भी हुई और साथ में प्राकृतिक संसाधनों का शोषण भी हुआ। इस सदी के अंत में जहाँ जनसंख्या अरब थी, वो 20वीं सदी में आते आते 1.6 अरब हो गई और 20वीं सदी के अंत तक छह अरब तक पहुँच गई।
- यूनाइटेड नेशन पॉपुलेशन असेंसमेंट की वर्ष 2004 की रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक जनसंख्या स्थिर हो जाएगी।
- एक रिपोर्ट के अनुसार 1.4 लाख प्रजातियाँ धरती से विलुप्त होने की कगार पर है जिनमें से 801 वन्यजीव भी शामिल हैं। वर्ल्डवाइड फंड फॉर नेचर की एक रिपोर्ट के अनुसार- आबादी अगर इसी रफ्तार से बढ़ती रही तो हमें डेढ़ गुना बड़ी पृथ्वी की आवश्यकता पड़ेगी।
- वर्ष 1970 से लेकर वर्ष 2015 के बीच में उर्जा के उपभोग में कई गुना बढ़ोतरी हुई है। मतलब 1970 में अगर उर्जा के उपयोग को शून्य मान लें तो 2010 में ये 150 गुना बढी व 2025 तक आते-आतें ये 250 गुना हो जाएगी और इसके लिये हद से ज्यादा प्रकृति का शोषण होगा।
- वर्ष 1947 में भारत की आबादी 33 करोड़ थी। यह मार्च 2018 में 135 करोड़ हो चुकी है। पिछले सत्तर सालों में यह चार गुना बढ़ोतरी है। दुनिया की कुल आबादी में अब भारत की हिस्सेदारी 17.8 प्रतिशत हो गई है। यानी दुनिया का हर छठा व्यक्ति भारतवासी

है। चीन ही एकमात्र देश है, जिसकी जनसंख्या भारत से ज्यादा है। यह महज सात करोड़ ही अधिक है, जबकि 1990 में यह भारत की जनसंख्या से 30.2 करोड़ अधिक थी।

- भारत की जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2010-15 के दौरान 1.24 प्रतिशत प्रति वर्ष रही है, जबकि इसी अवधि में चीन में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 0.61 प्रतिशत दर्ज की गई। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या विभाग का अनुमान है कि 2030 में भारत की आबादी चीन की आबादी से अधिक हो जाएगी। जनसंख्या वृद्धि दर पर आधारित इस अनुमान के अनुसार 2030 में भारत की जनसंख्या 147.6 करोड़ से अधिक हो जाएगी, जबकि चीन की जनसंख्या के बारे में अनुमान है कि यह उस समय 145.3 करोड़ सर्वोच्च स्थिति में पहुँचने के बाद कम होना शुरू हो जाएगी।

## CENSUS IN INDIA

- भारत में सर्वप्रथम जनगणना 1872 में हुई थी जो ब्रिटिश इंडिया ने करवाया था ! आजादी के बाद पहली बार भारत सरकार ने 1951 में जनगणना करवाया था तभी से प्रत्येक 10 वर्ष के अंतराल में करवाया जाता है ! 1951 से लेकर 2011 तक भारत में 7 बार जनगणना कराया गया है। भारत का अगला जनगणना वर्ष 2021 होगा।
- 1951 जनगणना- हिंदू - 84.1%, मुस्लिम - 9.8%, ईसाई - 2.3%, सिख - 1.89%, बौद्ध 0.74%, अन्य 0.43%, जैन 0.46%
- 2011 जनगणना- हिंदू - 79.8%, मुस्लिम - 14.23%, ईसाई - 2.3%, सिख - 1.72%, बौद्ध - 0.70%, अन्य - 0.9%, जैन - 0.37%, पारसी - 0.09%
- भारत में मुसलमानों की जनसंख्या 1951 में 9.8 प्रतिशत था जो बढ़ कर अब 14.23 (2011) प्रतिशत हो चुका है। भारत में हिंदुओं की जनसंख्या वर्ष 1951 में 84.1 प्रतिशत था जो घट कर 79.80 (2011) प्रतिशत हो चुका है !
- 2011 में भारत की जनसंख्या बीते एक दशक में 18.1 करोड़ बढ़कर अब 1.21 अरब हो गई है। जनगणना के ताजा आँकड़ों के मुताबिक, देश में पुरुषों की संख्या अब 62.37 करोड़ और महिलाओं की संख्या 58.64 करोड़ है।
- वर्ष 1991 की गणना में आबादी में 23.87 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई थी, 2001 में 21.54 फीसदी की बढ़ोतरी देखी गई, जबकि वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार बीते एक दशक में आबादी 17.64 फीसदी बढ़ी।
- जनगणना 2011 के अंतिम आँकड़ों के अनुसार, अब भारत की 1.21 अरब की आबादी अमेरिका, इंडोनेशिया, ब्राजील, पाकिस्तान और बांग्लादेश की कुल आबादी से भी ज्यादा है।
- उत्तर प्रदेश देश का सर्वाधिक आबादी वाला राज्य है। अगर उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के आँकड़ों को मिला दिया जाए तो दोनों राज्यों की कुल आबादी अमेरिका की जनसंख्या से अधिक होगी।
- अंतिम आँकड़ों के अनुसार, लिंगानुपात में सुधार हुआ है। पिछली जनगणना के मुताबिक देश में प्रति एक हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 933 थी, जो एक दशक में बढ़कर अब 940 हो गई है। आबादी में पुरुषों की संख्या 51.54 फीसदी और महिलाओं की संख्या 48.46 फीसदी है।
- महापंजीयक कार्यालय के आँकड़ों के अनुसार, लिंगानुपात में सबसे अधिक फर्क संघशासित प्रदेश दमन और दीव में है जहाँ प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 615 है। दादरा और नगर हवेली में लिंगानुपात 775 है। वहीं, केरल में प्रति एक हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 1,084 दर्ज की गई है। पुदुच्चेरी में लिंगानुपात 1,038 है।
- बहरहाल, चिंताजनक तथ्य यह है कि छह वर्ष तक की उम्र के बच्चों में लिंगानुपात में आजादी के बाद से सर्वाधिक गिरावट देखी गयी है। पिछली गणना में यह लिंगानुपात 927 था जो अब घटकर 914 हो गया है।
- उत्तर प्रदेश की आबादी सबसे ज्यादा 19.95 करोड़ है, जबकि लक्षद्वीप में आबादी सबसे कम यानी 64,429 है। सर्वाधिक आबादी वाले पाँच राज्यों में उत्तर प्रदेश के साथ ही महाराष्ट्र (11.23 करोड़), बिहार (10.38 करोड़), पश्चिम बंगाल (9.13 करोड़) और आंध्र प्रदेश (8.46 करोड़) शामिल हैं।
- सबसे कम आबादी वाले पाँच राज्यों में संघशासित लक्षद्वीप के साथ ही दमन और दीव (2.42 लाख), दादर और नगर हवेली (3.42 लाख), अंडमान और निकोबार द्वीप (3.79 लाख) और सिक्किम (6.97 लाख) शामिल है।
- पहली बार ऐसा हुआ है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, उत्तराखंड, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में आबादी वृद्धि दर में गिरावट आयी है।
- भारत की जनगणना 2011, भारत की 15वीं राष्ट्रीय जनगणना है, भारत में जनगणना 1872 से की जाती रही है और यह पहली बार है जब बायोमेट्रिक जानकारी एकत्रित की गई। जनगणना को दो चरणों में पूरा किया गया।
- जनगणना 2011 में किसी व्यक्ति की जाति से संबंधित सूचना का समावेश, किया गया। जाति संबंधी सूचना का समावेश पिछली बार ब्रिटिश राज के दौरान हुई 1931 की जनगणना में किया गया था।
- स्वतंत्र भारत में जाति-गणना का सिर्फ एक उदाहरण मिलता है। केरल में 1968 में ई.एम.एस. नंबूदिरीपाद की कम्युनिस्ट सरकार के द्वारा विभिन्न निचली जातियों के सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन के आकलन के लिए जाति-गणना की गयी थी। इस जनगणना को 1968 का सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण कहा गया था और इसके परिणाम केरल के 1971 के राजपत्र में प्रकाशित किए गए थे।
- जनगणना 2011 में हिन्दुओं की जनसंख्या 79.8% (96.8 करोड़) है। मुसलमानों की जनसंख्या 14.2% है (जनगणना के अनुसार 17.2 करोड़) जो की पिछले दसक 11% थी, 2,870,000 लोगों ने अपनी प्रतिक्रिया में कोई धर्म नहीं बताया, देश की जनसंख्या का लगभग 0.27%। हालाँकि, संख्या में नास्तिक, तर्कसंगतवाद और उन लोगों को शामिल किया गया जो उच्च शक्ति में विश्वास करते थे। 'अन्य' विकल्प नाबालिग या आदिवासी धर्मों के साथ-साथ नास्तिक और अज्ञेयवाद के लिए भी था।
- 2011 की जनगणना के अनुसार, 43.63% भारतीय लोगों ने हिंदी को अपनी मूल भाषा या मातृभाषा घोषित कर दिया है।[14][15] भाषा डेटा 26 जून 2018 को जारी किया गया था।[16] भिली / भिलोदी 1.04 करोड़ वक्ताओं के साथ सबसे ज्यादा बोली जाने वाली अनुसूचित भाषा थी, इसके बाद गोंडी 29 लाख वक्ताओं के साथ थीं। 2011 की जनगणना में भारत की आबादी का 96.71% 22 अनुसूचित भाषाओं में से एक अपनी मातृभाषा के रूप में बोलता है।

# PT / Mains - प्रश्न

## संभावित प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत 1952 में परिवार नियोजन अपनाने वाला दुनिया का पहला देश था।
   2. प्रति वर्ष 11 जुलाई को विश्व जनसंख्या दिवस मनाया जाता है।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2
   (उत्तर-C)

2. भारत के बाद उच्चतम जनसंख्या के मामले में ठीक नीचे के दो देश कौन-से हैं?
   (a) अमेरिका और पाकिस्तान
   (b) अमेरिका और ब्राजील
   (c) अमेरिका और इंडोनेशिया
   (d) अमेरिका और नाइजीरिया (उत्तर-C)

3. विश्व जनसंख्या दिवस-2018 का विषय क्या है?
   (a) परिवार नियोजन मानवाधिकार है
   (b) जनसंख्या-नियंत्रण
   (c) बुजुर्गों की देखभाल
   (d) समेकित स्वास्थ्य (उत्तर-A)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत में सर्वप्रथम जनगणना 1872 में हुई थी।
   2. आजादी के बाद भारत सरकार ने पहली जनगणना 1951 में करवाई थी।
   3. जनगणना 2011 के अनुसार भारत में मुस्लिम कुल जनसंख्या का 14.23 प्रतिशत है।
   4. जनगणना 2011 के अनुसार पिछले दशक में आबादी 17.64 प्रतिशत बढ़ी है।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 और 2 (b) केवल 1, 2 और 3
   (c) केवल 1, 2 और 4 (d) 1, 2, 3 और 4
   (उत्तर-D)

5. भारत में एक दशक में होने वाली प्रगति को दशकीय जनसंख्या-वृद्धि शून्य कर देती है। टिप्पणी कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. भारत को एक 'जनसांख्यिकीय लाभांश' वाले देश के तौर पर माना जाता है। यह निम्नलिखित में से किस कारण से है?
   (a) 15 वर्ष से नीचे की आयु-सीमा में इसकी उच्च जनसंख्या
   (b) 15-64 वर्ष की आयु-सीमा के मध्य इसकी उच्च जनसंख्या
   (c) 65 वर्ष से ऊपर की आयु-सीमा के मध्य इसकी उच्च जनसंख्या
   (d) इसकी कुल उच्च जनसंख्या
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2011, उत्तर-A)

2. निम्नलिखित में से कौन-से दक्षिण-एशियाई देश में उच्चतम जनसंख्या घनत्व है?
   (a) भारत (b) नेपाल
   (c) पाकिस्तान (d) श्रीलंका
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2009, उत्तर-A)

3. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 के अनुसार, निम्नलिखित में से किस वर्ष तक हमारा दीर्घकालीन उद्देश्य है कि हम जनसंख्या स्थिरीकरण प्राप्त कर लेंगे?
   (a) 2025 (b) 2035
   (c) 2045 (d) 2055
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2008, उत्तर-C)

4. भारत, चीन, यू.के. एवं यू.एस.ए. के लिए निम्नलिखित में से कौन उनकी जनसंख्या के माध्यक-उम्र का सही क्रम है?
   (a) चीन < भारत < यू.के. < यू.एस.ए.
   (b) भारत < चीन < यू.एस.ए. < यू.के.
   (c) चीन < भारत < यू.एस.ए. < यू.के.
   (d) भारत < चीन < यू.के. < यू.एस.ए.
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2008, उत्तर-B)

5. भारत की मौजूदा जनसंख्या में से 65 वर्ष की आयु से ऊपर के व्यक्तियों का अनुमानित प्रतिशत क्या है?
   (a) 14-15% (b) 11-12%
   (c) 8-9% (d) 5-6%
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2008, उत्तर-D)

**6.** भारत में वृद्ध जनसमूह पर वैश्वीकरण के प्रभाव का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2013)

**7.** 1956 में स्वेज संकट को पैदा करने वाली घटनाएँ क्या थी? उसने एक विश्व शक्ति के रूप में ब्रिटेन की आत्म-छवि पर किस प्रकार अंतिम प्रहार किया?
(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2014)

**8.** "लेनिन की नव आर्थिक नीति-1921 ने स्वतंत्रता के शीघ्र पश्चात् भारत द्वारा अपनायी गई नीतियों को प्रभावित किया था।" मूल्यांकन कीजिए।
(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2014)

**9.** 'भारत में जनांकिकीय लाभांश तब तक सैद्धांतिक ही बना रहेगा जब तक कि हमारी जनशक्ति अधि शिक्षित, जागरूक, कुशल और सृजनशील नहीं हो जाती।" सरकार ने हमारी जनसंख्या को अधिक उत्पादनशील और रोजगार-योग्य बनने की क्षमता में वृद्धि के लिए कौन-से उपाए किए हैं?
(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2016)

GS World Committed To Excellence

# न्यूनतम समर्थन मूल्य का आधार

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-3 (आर्थिकी) से संबंधित है।*

**हाल ही में केन्द्र सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य किस सीमा तक भारतीय कृषकों को अपने फसल का उचित मूल्य प्रदान कर पायेंगे, यह चिंतनीय है। वहीं न्यूनतम समर्थन मूल्यों के निर्धारण के आधार को लेकर विवाद जारी है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'राष्ट्रीय सहारा', 'हिन्दुस्तान', 'नवभारत टाइम्स', 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'नई दुनिया', 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला' तथा 'प्रभात खबर' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## साफ नहीं नीयत (राष्ट्रीय सहारा)

पिछले लोकसभा चुनाव से पहले भाजपा ने किसानों से वादा किया था कि सत्ता में आने पर वह स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों को लागू करेगी। इस मुद्दे को चुनावी घोषणा पत्र में भी शामिल किया गया था लेकिन चार साल के कार्यकाल में इस दिशा में कोई कारगर कदम नहीं उठाए गए। एक साल के भीतर ही उसने सुप्रीम कोर्ट में हलफनामा दाखिल कर दिया कि इन सिफारिशों को लागू करना संभव नहीं है। अब अचानक सरकार को किसानों की याद आई और दावा कर दिया कि स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के अनुसार कृषि की लागत पर 50 फीसद जोड़कर फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) घोषित किए जा रहे हैं। सच यह है कि स्वामीनाथन आयोग ने खेती की सभी प्रकार की लागतों को जोड़कर जिसे सी-2 लेवल कहा जाता है, इसमें 50 फीसद और जोड़ने की बात कही थी मगर सरकार ने ए-2 जमा परिवार की मजदूरी में 50 फीसद जोड़कर एमएसपी घोषित किया है। यह सुझाव किसी चतुर नौकरशाह ने दिया होगा। किसान इतनी बारीकी को नहीं समझ पाता और उसे सफलतापूर्वक भ्रमित किया जा सकता है। सरकार को यह समझ लेना चाहिए कि किसान अब इतना अज्ञानी नहीं रहा। उसे यह बात बखूबी समझ आ चुकी है कि सरकार उसे एक बार फिर धोखा दे रही है। उदाहरण के तौर पर पिछले साल धान की खेती की लागत प्रति क्विंटल 1440 रुपये के करीब थी। इस हिसाब से धान का समर्थन मूल्य पिछले साल ही 2200 रुपये से ऊपर होना चाहिए था न कि 1550 रुपये। यह मूल्य इस साल 2300 रुपये से ऊपर होना चाहिए परंतु सरकार ने घोषित किया है केवल 1750 रुपये। इस संबंध में हाल ही में डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन का एक वक्तव्य भी आ चुका है, जिसमें कहा गया है कि उन्होंने अपनी रिपोर्ट में सी-2 लागत के ऊपर एमएसपी घोषित करने की सिफारिश की थी। इस वक्तव्य के बाद सरकार का दावा पूर्णत: खोखला साबित हो जाता है। यह बात भी ज्ञातव्य है कि पिछले चार वर्षों में धान और गेहूँ को छोड़कर बाकी सभी फसलों के दाम जब भी समर्थन मूल्यों से नीचे गिरे सरकार उन्हें रोकने में विफल रही। परिणामत: अधिकांश फसल के दाम, जिसमें दलहन और तिलहन सभी शामिल हैं, किसानों को घोषित मूल्य से 30 से 40 फीसद तक कम मिलते रहे। सरकार ने एक दावा यह भी किया है कि भारत के इतिहास में पहली बार समर्थन मूल्यों की घोषणा फसल की बुवाई से पहले की जा रही है। सच यह है कि ऐसी व्यवस्था 1986 से लागू है। तीसरा दावा सरकार ने यह किया है कि उसने किसानों को नीम लेपित यूरिया पहली बार उपलब्ध कराया है। यह पिछले लगभग एक दशक से किसानों को मिलता रहा है। चौथा दावा सरकार ने यह किया है

## समर्थन मूल्य और किसानों की दुविधा (हिन्दुस्तान)

बुधवार को घोषित खरीफ की फसल का न्यूनतम समर्थन मूल्य सरकार का एक बड़ा दाँव है। इस घोषणा में चार-पाँच महत्त्वपूर्ण बातें छिपी हैं, जिसका विश्लेषण जरूरी है। पहली तो यह कि सत्तारूढ़ दल ने 2014 के चुनावी घोषणापत्र में यह लिखित वचन दिया था कि वह स्वामीनाथन आयोग की उस सिफारिश को सत्ता में आते ही लागू करेगी, जिसमें किसानों को सी-2 लागत (फसल की हर मद को जोड़ते हुए कुलजमा लागत) के ऊपर 50 प्रतिशत जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य देने की बात कही गई थी।

दूसरी बात, 2015 में जब इस संदर्भ में एक जनहित याचिका सर्वोच्च न्यायालय में डाली गई, तब अपने जवाब में केंद्र सरकार ने एक शपथ पत्र दाखिल किया कि यह व्यावहारिक नहीं है और वर्तमान संसाधनों में संभव भी नहीं है। इसके दो अर्थ निकाले जा सकते हैं- एक, चुनावी वादा एक अलग चीज थी, दूसरा, इसे लागू करने की इच्छा के बावजूद उपलब्ध संसाधनों में इसे पूरा करना संभव नहीं था। इसलिए पूरे मामले ने यह मोड़ ले लिया कि पिछली सरकारों ने ऐसा नहीं किया। बार-बार यह कहा जाता रहा कि स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट काफी पहले आ गई थी, लेकिन उनकी सिफारिशों पर बिल्कुल अमल नहीं किया गया। मगर सच है कि बाद में भी यह नहीं किया जा सका। अभी तक इस मामले में ज्यादा नहीं हो सका, तो अगले बजट में भी कुछ नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि वह आचार संहिता से पहले का बजट होगा। हाँ, इस बार बजट में स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों को लागू करने की बात कही जरूर गई, लेकिन उस वक्त अमल नहीं किया गया। कहा गया कि आगामी खरीफ से इस पर अमल होगा। इसलिए इस मौके पर उम्मीद बनना स्वाभाविक ही था।

पहले आमतौर पर सी-2 लागत के ऊपर 10-12 प्रतिशत जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा होती थी। उसके मुकाबले सत्तारूढ़ दल ने 50 प्रतिशत की बात की, जिसकी चर्चा स्वामीनाथन आयोग में भी की गई है। मगर इन वर्षों में एक और चीज यह हुई है कि सी-2 लागत की परिभाषा ही बदल दी गई है। उसका नया बेंचमार्क नीचे कर दिया गया है।

पिछले चार वर्षों में जितने समर्थन मूल्य घोषित किए गए हैं, उनमें केवल दो जिंसों यानी धान और गेहूँ को छोड़कर सभी फसलों के बाजार मूल्य सभी आठों मौसम में समर्थन मूल्य के नीचे रहे हैं। जबकि समर्थन मूल्य की प्रतिबद्धता या आधार यह है कि यदि बाजार में समर्थन मूल्य के नीचे किसी जिंस की कीमत जाती है, तो सरकार किसी कीमत पर उस दाम को नीचे नहीं गिरने देगी और तय कीमत पर किसानों से खरीदेगी।

कि वर्ष 2022 तक किसानों की आमदनी दोगुनी कर दी जाएगी। पिछले चार वर्ष का रिकार्ड देखें तो कृषि क्षेत्र की औसत विकास दर 2.2 फीसद रही है। यदि किसानों की आय आगामी चार सालों में दोगुना करनी है तो यह दर 20 फीसद प्रति वर्ष करनी होगी, जिसके लिए खेती में निवेश वर्तमान के मुकाबले 10 गुना बढ़ाना होगा। इस दिशा में अब तक कोई भी कारगर कदम उठाया गया प्रतीत नहीं होता है। यदि स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के अनुसार एमएसपी बढ़ाया जाता है तो केंद्र सरकार के इस कदम का सभी को तहेदिल से स्वागत करना चाहिए। लेकिन सवाल यह है कि जब इन सिफारिशों को लागू करने के लिए आम चुनाव से पहले लिखित वादा किया गया था तो उसे पूरा करने में चार साल क्यों लग गए? सचाई यह है कि पिछले वर्षों में सरकार ने जो एमएसपी घोषित किया था उसका लाभ किसानों को नहीं मिल पाया है। एक और महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि जब सरकार देश के शीर्ष न्यायालय में अपने लिखित वादे को पूरा करने से मुकर गई हो तो अब यह वादा आखिर कैसे पूरा हो सकता है? इससे जाहिर होता है कि सरकार लोकसभा चुनाव की आहट से पूर्व किसानों को एमएसपी के नाम पर फिर से झांसा दे रही है। एमएसपी के फैसले में सिर्फ वोट की राजनीति नजर आ रही है। यदि उसकी नीयत साफ होती तो सत्ता में आने पर वह सबसे पहले किसान हित में आयोग की सिफारिशों को लागू करती। इस मुद्दे को चार साल तक ठंडे बस्ते में डाले रखने से स्पष्ट होता है कि उसकी किसानों का भला करने की इच्छाशक्ति ही नहीं है। अब चुनाव से ऐन वक्त पहले इन सिफारिशों को लागू करने का जो दावा किया जा रहा है वह सिर्फ वोट के लिए किसानों का दोहन करने के लिए है। एमएसपी तय करने की आदर्श स्थिति तो यह है कुल लागत में खेती का खर्च भी जोड़ा जाए क्योंकि आजकल बड़ी संख्या में किसान किराए पर जमीन लेकर खेती कर रहे हैं। यदि इस पर अमल किया जाए तो प्रमुख फसल के एमएसपी की दरें काफी ऊँची बैठेंगी किंतु इस पर कोई गौर नहीं किया गया। सचाई यह है कि अब 24 से अधिक फसलें एमएसपी के दायरे में आती हैं लेकिन देश के ज्यादातर राज्यों में गेहूँ, धान, गन्ना और कपास के अलावा कोई भी फसल न्यूनतम समर्थन मूल्य पर नहीं खरीदी जाती। पिछले साल खरीफ की फसल की ही बात करें तो सरकार ने अरहर, मूँग और उड़द जैसे दलहन के दाम 5000 रुपए प्रति क्विंटल के स्तर पर घोषित किए थे परंतु प्रमुख राज्यों की मंडियों में मूँग 3200 से 3800 रुपये प्रति क्विंटल के भाव पर बिकी। कमोबेश अन्य दलहन की कीमतों की भी यही स्थिति रही। जब यही फसल व्यापारियों के गोदामों में पहुँच गई तो इनके भाव एमएसपी से काफी ऊपर पहुँच गए। इससे साफ जाहिर होता है कि सरकार का कृषि बाजार पर नियंत्रण नहीं है। यही व्यवस्था दशकों से चली आ रही है। इस स्थिति में आखिर एमएसपी बढ़ाने का औचित्य ही क्या रह जाता है? जब सरकार मंत्रिमंडल की बैठक कर फसलों का एमएसपी घोषित करती है तो किसानों का यह संवैधानिक अधिकार बन जाता है कि सरकार उनकी पूरी फसल निर्धारित मूल्य पर खरीदने की व्यवस्था सुनिश्चित करे। बहरहाल, किसानों के हित के मामले में केंद्र सरकार सिर्फ ढिंढोरा ही पीटती आ रही है। कृषि क्षेत्र में उसकी ऐसी एक भी उपलब्धि नहीं दिख रही है, जिसे किसानों के हित में गिनाया जा सके। सरकार को यह बात अब अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि किसानों का इस्तेमाल करने की नीति अब नहीं चल पाएगी। खेतीबाड़ी से अब ऐसे लोग भी जुड़ गए हैं जिन्हें सरकार की नीतियों की अच्छी समझ है। यदि सरकार किसानों का वाकई में भला करना चाहती है तो उसे एमएसपी का ऐसा तंत्र विकसित करना होगा, जिससे तय मूल्य पर पूरी फसल की खरीद सुनिश्चित हो सके।

कृषि लागत और मूल्य आयोग की रिपोर्ट में एक वाक्य सब बार-बार दोहराते हैं कि आशा की जाती है कि किसान को न्यूनतम समर्थन मूल्य से ऊँचा मूल्य प्रायः मिलता रहेगा। यदि ऐसी स्थिति आती है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे बाजार के भाव जाते हैं, तो सरकार उसकी खरीद के जरिये उतना भाव तो सुनिश्चत कराएगी ही। मगर इन चार वर्षों में यह भी नहीं मिला। यानी एक तो लागत का स्तर बदला गया, चार साल तक वादा पूरा नहीं किया गया, घोषित समर्थन मूल्य नहीं मिले, फिर अब किस आधार पर यह विश्वास किया जाए कि जो घोषणा की गई है, वह मूल्य किसानों को मिल जाएगा?

न्यूनतम समर्थन मूल्य किसानों के हित में काम करता है। दरअसल, खेती की एक विशेष परिस्थिति है। उसका एक अलग स्वभाव है। सरकारी या निजी क्षेत्र में काम करने वाले तमाम श्रमिकों व कुशल कार्यकर्ताओं को एक निश्चित रकम तय अवधि में मिलती रहती है। यानी उसकी आय का स्रोत लगातार प्रवाहित होता रहता है। मगर किसानों के नगदी-प्रवाह में दिक्कत है। जिस दिन से वह खेत जोतकर बुआई की तैयारी करता है, तब से लेकर जब तक फसल नहीं आ जाती, उसके दोतरफा व्यय चलते रहते हैं। यानी खेती पर भी खर्च होता है और घर-परिवार पर भी, जबकि उसको आय छह महीने के बाद होती है। इन तमाम खर्चों और आय की प्रतीक्षा में किसानों की सहनशीलता जवाब देने लगती है। इसलिए बाजार में जो भी मूल्य मिलता है, उस पर वह अपनी फसल बेचने को तैयार हो जाता है। यह विवशता की बिक्री है। उसकी इस परिस्थिति का लाभ ही जमाखोर उठाते हैं और फिर उपभोक्ताओं को कई-कई गुना अधिक कीमत पर बेचते हैं। इस जाल को तोड़ने के लिए ही एमएसपी ईजाद की गई थी। 1965 में यह दो जिसों पर लागू होने के साथ शुरू हुआ, मगर अब जिंसों की संख्या बढ़कर 20 से अधिक हो चुकी है।

जाहिर है, आदर्श स्थिति यही है कि किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य से 20-25 प्रतिशत ऊपर दाम मिले। इसके लिए किसानों की माँग और बाजार में इस प्रकार के सुधार की अपेक्षा रहती है कि किसानों को वहाँ स्वतः यह दाम मिल जाए। न सरकार को फसल खरीदनी पड़े, न भंडारण करना पड़े, न कोई भ्रष्टाचार हो और न किसानों को कठिनाई हो। मगर मुश्किल यह है कि उदारीकरण और वैश्वीकरण के तमाम सुधारों के बाद भी किसानों के बाजार के ऊपर उसी तरह के प्रतिबंध आयद हैं। वे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र अनाज नहीं ले जा सकते, तय मात्रा से अधिक जमा नहीं कर सकते, और तो और, निर्यात भी नहीं कर सकते। अभी भी सरकारी मंडियों में एकाधिकार के कारण किसानों का जमकर शोषण होता है।

स्पष्ट है, एमएसपी की व्यवस्था तो रहे, लेकिन बाजार की परिस्थिति भी ऐसी बने कि किसान को स्वतः जिंसों के मूल्य ज्यादा मिलें। और अगर उससे कम होता है, तो एमएसपी की मजबूत प्रणाली उसे थाम ले।

## फसलों के अच्छे दाम (नवभारत टाइम्स)

केंद्र सरकार ने साल 2018-19 की खरीफ फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में अच्छी बढ़ोतरी कर किसानों को बड़ा तोहफा दिया है। पिछले एक साल से लगातार आंदोलन कर रहे किसानों को इससे राहत मिलनी चाहिए। सरकार ने 14 कृषि उपजों का एमएसपी बढ़ाया है। धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 200 रुपये प्रति क्विंटल का इजाफा किया गया है, जो छह साल में सबसे ज्यादा है। इससे पहले यूपीए शासन के दौरान 2012-13 में धान का एमएसपी 170 रुपये प्रति क्विंटल बढ़ाया गया था।

## अपर्याप्त राहत ( बिजनेस स्टैंडर्ड )

सरकार ने खरीफ की फसल के लिए जिस नए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की घोषणा की है वह काफी हद तक उस घोषणा के अनुरूप ही है जिसमें उसने उत्पादन लागत से 50 फीसदी अधिक एमएसपी देने की बात कही थी। परंतु इससे किसानों को अपर्याप्त राहत ही मिलेगी। हर उत्पादक को ये दर मिलें, इसके लिए एक ऐसी व्यवस्था कायम करनी होगी जिसमें कोई चूक न हो। दुर्भाग्यवश आज की घोषणा में इस अहम मुद्दे पर भी खामोशी बरती गई है। इसमें केवल मौजूदा बाजार समर्थन व्यवस्था को जारी रखने की बात की गई है। परंतु यह व्यवस्था बहुत सीमित किसानों तक ही पहुँचती है। सरकार का कहना है कि कीमतों में किए जाने वाले इस इजाफे से सरकार पर करीब 335 अरब रुपये का अतिरिक्त वित्तीय बोझ पड़ेगा। यह सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 0.2 फीसदी के बराबर है। परंतु चूँकि यह अनुमान केवल खरीफ की फसल का है इसलिए कहा जा सकता है कि जब आगामी रबी सीजन की फसल के लिए भी ऐसी ही बढ़ोतरी की जाएगी तो सरकार पर सालाना वित्तीय बोझ बहुत अधिक बढ़ जाएगा। अभी यह स्पष्ट नहीं है कि इस कदम का खाद्य मुद्रास्फीति पर क्या असर होगा। हालाँकि शायद इनका उतना असर नहीं हो क्योंकि ये कीमतें चुनिंदा फसलों पर लागू होती है और वह भी सीमित इलाकों में।

ग्रामीण क्षेत्रों की निराशा देखते हुए सरकार की कोशिश यही है कि एमएसपी में की गई बढ़ोतरी किसानों की आय में बढ़त के रूप में नजर आए। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसानों को सभी फसलों के लिए यह दर मिले और वह भी देश के सभी इलाकों में। कृषि उपज का अधिकांश हिस्सा, खासतौर पर उन इलाकों में जहाँ सरकारी खरीद एजेंसियाँ काम नहीं करती हैं, वहाँ फसल कटाई के बाद के समय में फसल एमएसपी से काफी कम दाम पर बिक जाती है। ऐसी बिक्री अस्वाभाविक नहीं हैं। पिछले बजट में भी सरकार ने वादा किया था वह किसानों को उनकी उपज का अच्छा मूल्य दिलाने की व्यवस्था सुनिश्चित करेगी। इस विषय पर निर्णय नए एमएसपी की घोषणा के साथ ही सामने आ जाना चाहिए था।

नीति आयोग पहले ही इस बारे में संभावित विकल्प प्रस्तुत कर चुका है। खुली खरीद की व्यवस्था को सभी फसलों पर लागू करना एमएसपी के प्रवर्तन का सबसे अच्छा तरीका है लेकिन इस क्षेत्र में कई ऐसी दिक्कतें हैं जिन्हें हल करना असंभव तो नहीं लेकिन मुश्किल अवश्य है। खरीद केंद्रों पर बहुत व्यापक बुनियादी ढाँचे की आवश्यकता होगी। इस बढ़ी हुई खरीद के लिए परिवहन और भंडारण क्षमता रातोरात नहीं विकसित की जा सकती है। चावल और गेहूँ के अलावा अन्य कृषि जिंसों के निपटान के तरीके और उपाय भी रातोरात नहीं तलाश किए जा सकते। चावल और गेहूँ को तो भारी सब्सिडी के साथ सार्वजनिक वितरण प्रणाली से बेचा जा सकता है।

नीति आयोग ने खुली खरीद पर आधारित बाजार समर्थन व्यवस्था के स्थानापन्न के रूप में जो विकल्प सुझाए हैं उनमें मूल्य अंतर के भुगतान की व्यवस्था सबसे अधिक उचित प्रतीत होती है। इस व्यवस्था में बाजार में हस्तक्षेप के लिए खरीद नहीं करनी होती है। इसमें दो राय नहीं कि मध्य प्रदेश में शुरुआती अनुभव बहुत सकारात्मक नहीं रहे हैं। हालाँकि उसके बाद कई राज्यों ने इसे दोहराया है। परंतु अधिकांश दिक्कतें व्यावहारिक प्रकृति की हैं जिन्हें हल किया जा सकता है। केंद्र सरकार एमएसपी के क्रियान्वयन को लेकर जो भी अंतिम निर्णय ले वह उसे शीघ्र लेना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया गया तो एमएसपी में इतनी बढ़ोतरी करने से भी कोई खास लाभ नहीं होगा।

इस बार धान का समर्थन मूल्य 1550 से 1750 रुपये किया गया है, यानी पिछले साल के मुकाबले 13 प्रतिशत ज्यादा। एमएसपी वह मूल्य है, जिस पर सरकार किसानों से उनकी उपज खरीदती है। एमएसपी की शुरुआत किसानों को गेहूँ, चावल जैसी फसलों का उत्पादन बढ़ाने को प्रेरित करने के लिए की गई थी। बंपर उत्पादन के दौरान यह किसानों को फसलों के दाम में भारी गिरावट की मार से बचाने की गारंटी भी देती है। सरकारें 1965 से ही विभिन्न रूपों में एमएसपी में बढ़ोतरी का ऐलान करती रही हैं, हालाँकि मौजूदा सरकार के पिछले चार वर्षों में इसका औसत काफी कम रहा। सरकार ने चुनावी साल में कसर पूरी करने का प्रयास किया है, लेकिन विपक्ष ने इस बढ़ोतरी को अपर्याप्त बताया है और एमएसपी तय करने के फार्मूले पर सवाल भी उठाए हैं। दरअसल फसलों की कुल लागत के आकलन में बीज, खाद, कीटनाशक, मशीनरी और मजदूरी तो शामिल हैं, लेकिन जमीन की लगान का इसमें हिसाब नहीं रखा गया है। इस पर केंद्रीय मंत्री हरसिमरत बादल ने सफाई दी है कि लागत के आकलन में भूमि खर्च को शामिल करना संभव नहीं है क्योंकि हर राज्य में यह अलग-अलग है। एमएसपी में बढ़ोतरी से केंद्र सरकार को 15,000 करोड़ रुपये का अतिरिक्त खर्च करना होगा।

दरअसल उस पर सब्सिडी का बोझ बढ़ेगा, क्योंकि कमजोर वर्ग को कम दर पर राशन देने के लिए उसे अनाज महँगा खरीदकर सस्ते में उपलब्ध कराना होगा। हालाँकि वित्त मंत्री अरुण जेटली नहीं मानते कि इससे सरकार पर कोई बोझ बढ़ेगा। उनका कहना है कि बजट में खाद्य सब्सिडी के लिए प्रावधान किए गए हैं इसलिए एमएसपी में वृद्धि से राजकोषीय घाटे का लक्ष्य प्रभावित नहीं होगा। सच्चाई यह है कि चुनावी साल होने के चलते सरकार के लिए यह एक सुरक्षित दाँव है। सही पड़ा तो वह फिर से सत्ता में आएगी, नहीं पड़ा तो खर्चे का बोझ अगली सरकार को झेलना होगा। इसका लाभ उन राज्यों के किसानों को ज्यादा आसानी से मिलेगा, जहाँ सरकारी मंडियाँ ठीक से काम कर रही हैं। लेकिन जिन राज्यों में किसानों की उपज सरकारी खरीद केंद्रों तक पहुँच ही नहीं पाती, खासकर उन तक और मोटे तौर पर देश भर के छोटे-मझोले किसानों तक इसका फायदा पहुँचाना टेढ़ा काम है।

## वादे पर अमल ( नईदुनिया )

आखिरकार केंद्र सरकार ने अपने वादे के तहत खरीफ की फसलों के बढ़े हुए न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित कर दिए। चूँकि यह वादा बजट में किया गया था, इसलिए इसकी प्रतीक्षा की जा रही थी कि खरीफ फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य कब घोषित होते हैं? यह प्रतीक्षा इस जिज्ञासा के साथ हो रही थी कि सरकार की ओर से घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य लागत से सचमुच डेढ़ गुना होंगे या नहीं? आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति की ओर से लिए गए फैसले की जानकारी देते हुए गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने यह रेखांकित किया कि खरीफ की फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य लागत से डेढ़ गुना ही हैं। चूँकि न्यूनतम समर्थन मूल्य की गणना करते समय खेती के सभी खर्चों समेत किसान परिवार के श्रम के मूल्य का भी आकलन करके कुल लागत में 50 फीसदी लाभांश जोड़ा गया है, इसलिए फैसले पर विवाद की गुंजाइश कम है, लेकिन यह तय है कि विपक्षी नेता कुछ न कुछ आपत्ति जताएंगे। महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि इस बड़े और बहुप्रतीक्षित फैसले पर विपक्षी दल क्या कहते हैं? महत्त्व इसका है कि किसान संतोष प्रकट करते हैं या नहीं? किसानों को यह लगना चाहिए कि खेती अब घाटे का सौदा नहीं रही। कृषि उपज की खरीद के बाद किसानों के हाथ इतना पैसा आवश्यक है कि वे अपनी आम जरूरतें पूरी कर सकें और साथ ही अपना जीवन-यापन बेहतर तरीके से

## एमएसपी के अतिरिक्त 50% का लाभकारी मूल्य किसानों को दिए जाने का मोदी का वादा अधूरा रहा ( दैनिक जागरण )

देर से ही सही, लेकिन खरीफ फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी के लागत का डेढ़ गुना किया जाना खेती-किसानी के संकट निवारण की दिशा में बड़ी पहल है। केंद्र सरकार द्वारा खरीफ की 14 फसलों के लिए एमएसपी में उत्साहवर्धक बढ़ोतरी से न सिर्फ कृषि जगत को राहत मिली, बल्कि पिछले कई वर्षों से फसलों के गिरते दाम व एमएसपी न मिलने से हताश किसानों को उम्मीद की एक किरण नजर आई है। खरीफ वर्ष 2018-19 के लिए साधारण धान के एमएसपी में 200 रुपये प्रति क्विंटल के इजाफे के साथ इसकी कीमत 1750 रुपये प्रति क्विंटल निर्धारित की गई है जो कि घोषित 1166 रुपये के लागत मूल्य से 50.09 फीसदी अधिक है।

पिछले वर्ष धान का एमएसपी 1550 रुपये प्रति क्विंटल था। पिछले कई वर्षों से इसके एमएसपी में सांकेतिक बढ़ोतरी की तुलना में इस बार धान उत्पादकों को प्रति क्विंटल 200 रुपये की भारी बढ़ोतरी मिलेगी। इससे पूर्व राजग शासन के दौरान इसमें महज 50 से 80 रुपये प्रति क्विंटल की ही बढ़ोतरी की गई थी। वर्ष 2012-13 के संप्रग शासन के दौरान धान के एमएसपी में सर्वाधिक 170 रुपये प्रति क्विंटल की वृद्धि की गई थी जिसके बाद से किसान एमएसपी के अच्छे दिनों की बाट जोह रहे थे।

सच है कि नए एमएसपी में सभी फसलों की लागत पर 50 फीसदी का लाभकारी मूल्य निर्धारित किया गया है, लेकिन इस तथ्य की अनदेखी भी नहीं की जा सकती कि इन फसलों की लागत में भी बढ़ोतरी हुई है जो अन्य वर्षों की तुलना में अधिक है। वहीं इनके एमएसपी में हुई बढ़ोतरी से सरकार पर खाद्य सब्सिडी का बोझ बढ़कर दो लाख करोड़ रुपये से अधिक पहुँचने का अनुमान है।

लागत पर 50 फीसदी का मूल्य देने के अंकगणित में यह भी अनुमानित है कि इससे राजकोष पर लगभग 15,000 करोड़ रुपये का बोझ बढ़ेगा। इस बीच महँगाई दर में वृद्धि से आशंकित अर्थशास्त्री समेत चंद अर्थजीवियों की प्रतिक्रिया हैरान करने वाली रही। अफसोसजनक है कि जब कभी ऋण माफी, खाद्य सब्सिडी, एमएसपी या अन्य किसानी सहयोग की पहल होती है तो वित्तीय संस्थानों द्वारा उत्साहवर्धक सराहना नहीं की जाती। हजारों करोड़ रुपये की औद्योगिक सब्सिडी तथा लाखों करोड़ रुपये का एनपीए उन्हें नहीं खटकता है।

सातवें वेतन आयोग की सिफारिश से राजकोष पर 1.02 लाख करोड़ रुपये का बोझ आया था। लगभग एक करोड़ कर्मचारियों के उत्थान की दिशा में 60 करोड़ कृषक परिवार बाधक नहीं बनते, लेकिन किसान हितैषी नीतियों पर संस्थागत हायतौबा किसान विरोधी मंशा को ही दर्शाती है।

इस फैसले से वित्त मंत्री अरुण जेटली द्वारा फसलों की कीमत डेढ़ गुना करने का बजटीय आश्वासन तो जरूर पूरा हुआ है, लेकिन 2014 लोकसभा चुनाव के दौरान पार्टी व प्रधानमंत्री द्वारा स्वामीनाथन फॉर्मूले को हू-ब-हू लागू कर एमएसपी के अतिरिक्त 50 फीसदी का लाभकारी मूल्य दिए जाने का वादा अधूरा प्रतीत होता है। नई घोषणा में लागत मूल्य निर्धारण प्रक्रिया को लेकर किसान व उनके संगठनों की माँग पूरी नहीं हुई है जिस कारण तमाम किसान संगठनों ने अपनी नकारात्मक प्रतिक्रिया भी दर्ज कराई है।

यह सच है कि कृषि उत्पादों के दाम तय करने वाले कृषि लागत एवं मूल्य आयोग यानी सीएसीपी द्वारा लागत मूल्य तय करने वाली प्रक्रिया लंबे समय से सवालों के घेरे में रही है। मौजूदा लागत मूल्य निर्धारण में भी ए-2, एफ-एल को आधार बनाकर फसलों की लागत मूल्य के अनुपातिक एमएसपी बढ़ाया गया है जबकि किसान संगठनों द्वारा सी-2 प्रणाली को आधार मानकर लागत के अतिरिक्त 50 फीसदी का न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करने की माँग रही है।

संगठनों का आरोप है कि उन्हें सी-2 व्यवस्था के तहत 50 फीसदी का लाभकारी मूल्य दिए जाने का वादा किया गया था। इन आरोप-प्रत्यारोप करने को लेकर निश्चिंत हो सकें। ऐसा होने पर ही उनके बीच खुशहाली का संचार होगा और गाँवों में समृद्धि की झलक दिखेगी। नि:संदेह केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि केंद्र सरकार ने जैसा कहा, वैसा किया और इस क्रम में धान, कपास, दलहन, तिलहन समेत खरीफ की 14 फसलों के डेढ़ गुने न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित कर दिए। केंद्र सरकार के साथ ही राज्यों को इसकी व्यवस्था भी करनी होगी कि घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य पर ही कृषि उपज की खरीद हो और किसानों को पैसा समय पर मिले।

एक समय था, जब सरकारें फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में थोड़ी भी वृद्धि करती थीं तो उसे लोक-लुभावन फैसले की संज्ञा दी जाती थी। उस दौर को देखें तो यह एक बड़ा लोक-लुभावना फैसला है, लेकिन खेती और किसानों की दयनीय दशा को देखते हुए ऐसा फैसला आवश्यक हो गया था। वक्त की माँग और जरूरत पूरी करने वाले इस फैसले के साथ ही यह भी महसूस किया जाना चाहिए कि फसलों की खरीद लाभकारी मूल्य पर करने भर से खेती की दशा में सुधार नहीं होने वाला। खेती को उन्नत बनाने के लिए अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है। एक तो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि किसान आधुनिक ढंग से खेती करें और दूसरे, यह देखा जाना चाहिए कि कृषि पर आबादी की निर्भरता घटे। यह भी ध्यान रहे कि अभी खाद्यान्न के साथ-साथ फल-सब्जियों के भंडारण और उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने की भी कोई ठोस व्यवस्था करना शेष है। इसी तरह कृषि उपज की खरीद-बिक्री की समुचित व्यवस्था का निर्माण भी बाकी है। ये शेष काम होने पर ही वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य हासिल हो सकेगा।

## सुधारों से ही बदलेगी कृषि की तस्वीर : सीता ( नई दुनिया )

पिछले हफ्ते दो अलग-अलग राजनीतिक समूह यह दर्शाने की कोशिश करते नजर आए कि उन्हें वास्तव में किसानों के हितों की दूसरों से ज्यादा फिक्र है। इस संदर्भ में सबसे बड़ी घोषणा तो बेशक मोदी सरकार द्वारा खरीफ सीजन की फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में डेढ़ गुने इजाफे को लेकर की गई। वहीं दूसरी ओर कर्नाटक की जद(एस) व कांग्रेस की साझा सरकार ने अपने पहले बजट में किसानों के लिए 34,000 करोड़ रुपए की कर्ज माफी योजना घोषित की।

कह सकते हैं कि किसानों की आपदा दूर करने के नाम पर सत्ताधारी वर्ग द्वारा अमूमन ऐसी ही घोषणाएँ की जाती हैं, खासकर जब चुनाव नजदीक हों। लेकिन ऐसी लोक-लुभावन घोषणाओं की इनके प्रतिकूल वृहद-अर्थशास्त्रीय निहितार्थों की वजह से आलोचना भी होती है। एमएसपी में हालिया इजाफे की भी यह कहते हुए आलोचना की जा रही है कि ये उस अनुपात में नहीं है, जितना किसान उम्मीद कर रहे थे। किसान फसल की सी-2 लागत पर डेढ़ गुना इजाफा चाहते हैं, जबकि यहाँ पर ए-2 प्लस एफएल पर डेढ़ गुना इजाफे की बात हो रही है। गौरतलब है कि सी-2 लागत में फसल उत्पादन हेतु प्रयुक्त नकदी और गैर-नकदी के साथ ही जमीन पर लगने वाले लीज रेंट और जमीन के अलावा दूसरी कृषि पूंजियों पर लगने वाला ब्याज भी शामिल होता है। वहीं ए-2 लागत में किसानों द्वारा फसल उत्पादन में किए गए सभी तरह के नकदी खर्च जैसे बीज, खाद, रसायन, मजदूर खर्च, ईंधन खर्च, सिंचाई खर्च आदि शामिल होते हैं। ए-2 प्लस एफएल लागत में नकदी खर्च के साथ ही कृषक परिवार के सदस्यों की मेहनत की अनुमानित लागत को भी जोड़ा जाता है।

बहरहाल, यहाँ बुनियादी सवाल यह है कि क्या कर्ज माफी या न्यूनतम समर्थन मूल्य में इजाफा करने जैसी कवायदों से वास्तव में किसानों का भला होता है? पहले कर्ज माफी की बात करते हैं। यदि कर्ज माफी योजनाओं से किसानों की समस्याओं का समाधान होता तो वर्ष 2008 में संप्रग सरकार द्वारा 72,000 करोड़ रुपए की भारी-भरकम कर्ज माफी की गई जो घोषणा

के बीच तथ्यों की स्पष्टता हेतु ए-2-एफ-एल की तकनीकी को समझना आवश्यक है। सीएसीपी द्वारा तीन चरणों में 23 फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित होता है। प्रक्रिया ए-2 के तहत किसानों द्वारा खेती में उपयुक्त सभी सामग्री जिसमें बीज, उर्वरक, कीटनाशक, मजदूरी तथा मशीनों का किराया शामिल होता है।

चूँकि कृषक परिवार भी खेती में शामिल होते हैं तो उनका पारिवारिक श्रम यानी एफ-एल को भी इस प्रक्रिया में जोड़ा जाता है जो ए-2 और एफएल का योग होता है। इन दोनों से इतर 'व्यापक लागत' यानी सी-2 व्यवस्था के तहत अन्य लागतों के साथ अपनी भूमि व पूंजी का किराया भी शामिल होता है, जो ए-2-एफएल से अधिक व्यापक होता है, यही किसानों की माँग रही है। सी-2 प्रणाली के तहत धान के नए एमएसपी में महज 15 फीसदी का इजाफा हुआ है जबकि ए-2-एफएल के तहत बढ़ोतरी का आँकड़ा 50 फीसदी तक पहुँच रहा है।

राष्ट्रीय किसान आयोग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने भी एमएसपी निर्धारण की इसी प्रक्रिया की सिफारिश की है। उनके द्वारा यह विचार भी रखा जा चुका है कि किसानों की कर्ज माफी के बजाय सरकार द्वारा सी-2 व्यवस्था से एमएसपी प्रदान करने की पहल ज्यादा कल्याणकारी होगी। हालाँकि बजट में उत्पादों की डेढ़ गुना कीमत देने के वादे के बीच कृषि भूमि के किराये को लागत मूल्य से वंचित रखने की सिफारिश किसान संगठनों को पहले ही निराश कर चुकी है। एमएसपी में अनुशंसित स्तर से कम हुई बढ़ोतरी के असंतोष के बावजूद किसानी संकट को काबू करने की दिशा में यह निश्चित ही सराहनीय प्रयास है।

कृषि व कृषक सुरक्षा की ओर एक कदम बढ़ाने के बाद अब सरकार के समक्ष चुनौती होगी कि प्रत्येक फसल उत्पाद की खरीदारी नए एमएसपी पर सुनिश्चित की जाए। हाल के महीनों में कई राज्यों से मूँगफली, कपास, सोयाबीन, बाजरा, मूँग, ज्वार, अरहर, मक्का और उड़द के मंडी भाव और एमएसपी में बड़ा भारी अंतर देखा गया है। कहीं धान में नमी की मात्रा बताकर किसानों को एमएसपी से दूर रखा जाता है तो कभी उत्पादन में बहुतायत या अन्य विवशताओं के कारण औने-पौने दाम पर उन्हें अनाज बेचने को मजबूर होना पड़ता है।

संसद में भी यह बात स्वीकारी जा चुकी है कि किसानों को निर्धारित एमएसपी नहीं मिल पा रहा है। इस स्थिति में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा भावांतर भुगतान योजना की पहल सराहनीय रही, लेकिन इससे एमएसपी प्रणाली की विफलता भी सार्वजनिक हुई है। 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने को वचनबद्ध सरकार को न सिर्फ 23 फसलों के एमएसपी अदायगी पर सख्त नजर रखनी होगी, बल्कि आलू, प्याज, टमाटर, हरी मिर्च, मौसमी फल, सब्जियों तथा दूध के लाभकारी मूल्य की भी कड़ी निगरानी रखनी होगी। चुनावी आचार संहिता के कारण आगामी बजट में किसानों के लिए विशेष घोषणा की गुंजाइश नहीं दिखती। ऐसे में निर्धारित एमएसपी के भुगतान में कड़ी निगरानी किसानों के लिए तात्कालिक राहत एवं अन्य आयोगों की तर्ज पर किसान आयोग का गठन कर उनके अनुकूल नीति-निर्माण व समस्याओं का त्वरित निपटारा मौजूदा सरकार की बड़ी सफलता होगी।

## फसल के दाम वोटों के नाम ( अमर उजाला )

बिस्मार्क ने कहा था, राजनीति संभावनाओं की कला है। विस्तार और समेकन की अपनी निरंतर खोज में नरेंद्र मोदी की भाजपा ने आयरन चांसलर की राजनीति से संबंधित कहावत को चुनावी लाभ हासिल करने की कला के रूप में बदल दिया है। पिछले हफ्ते मोदी सरकार ने छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और राजस्थान के लिए भाजपा का अभियान छेड़ दिया और लोकसभा चुनाव 2019 का बिगुल फूंक दिया। इस बात की काफी चर्चा रही है कि गुजरात और कर्नाटक चुनाव के बाद भाजपा ग्रामीण क्षेत्र के संकट पर रक्षात्मक है और उत्तर प्रदेश में बुआ-भतीजा की जुगलबंदी चल रही है। हाल ही में सरकार द्वारा 14 फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य की गई थी, उससे तो किसानों की समस्याओं का हमेशा के लिए अंत हो जाना चाहिए था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि यह योजना उस मूल कारण का समाधान नहीं करती थी, जिसके चलते किसान कर्ज चुका नहीं पाते और वह है कृषि में लाभकारिता का अभाव। लिहाजा कर्ज माफी योजनाओं से किसानों के तात्कालिक कर्ज की समस्या का तो समाधान हो जाता है, किंतु वे अगले कर्जों को चुकाने में सक्षम नहीं बन पाते।

इसके अलावा कर्ज माफी योजनाओं से सिर्फ उन्हीं किसानों को फायदा मिल पाता है जो किसी सरकारी या सहकारी संस्था अथवा बैंक जैसे संस्थागत स्रोत से कर्ज लेते हैं। इन कर्ज माफी योजनाओं का एक बड़ा हिस्सा बड़े किसानों के खाते में चला जाता है। सीमाँत किसान, जिनके पास एक हेक्टेयर से भी कम जमीन है और जो कुल किसानों के तकरीबन 67 फीसदी हैं, अपने ज्यादातर कर्जे महाजनों या सूदखोरों, रिश्तेदारों, व्यापारियों और भू-स्वामियों से लेते हैं और इस तरह वे कर्ज माफी योजनाओं के दायरे से बाहर रह जाते हैं।

अब न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी की बात करें तो पूर्ववर्ती यूपीए सरकार ने भी वर्ष 2009 के चुनाव से पहले इसमें अच्छा इजाफा किया था। लेकिन क्या इससे किसानों की बदहाली दूर होने की राह प्रशस्त हुई? ऐसा नहीं हो सका क्योंकि कुल सरकारी खरीद में से 80 फीसदी तो पाँच राज्यों में ही हो रही थी और आज भी ज्यादातर किसान एमएसपी या उस सरकारी खरीद एजेंसी के बारे में नहीं जानते, जिसके तहत वे अपनी उपज को बेच सकें। ऐसे में सरकारी खरीद तंत्र को जमीनी स्तर पर प्रभावी और कारगर बनाए बगैर महज एमएसपी में इजाफे से क्या होगा?

इस परिप्रेक्ष्य में ओईसीडी-आईसीआरआईईआर द्वारा भारत में कृषि संबंधी नीतियों पर केंद्रित रिपोर्ट पर चर्चा लाजिमी है। इस रिपोर्ट में कृषि अर्थशास्त्री अशोक गुलाटी ने बताया कि किस तरह एमएसपी के तहत आने वाले तमाम खेतिहर उत्पादों की बाजार कीमतें घोषित मूल्य इजाफे से कहीं कम थीं। मसलन, गुजरात के जामनगर में मूँगफली की कीमतें घोषित एमएसपी के मुकाबले 43 फीसदी कम पाई गई, उज्जैन की मंडी में उड़द की कीमतें 59 फीसदी कम थीं और सूरत में मूँग 36 फीसदी कम भाव में बिक रही थी।

क्या सरकार के पास उच्च एमएसपी पर खरीद करने के वित्तीय व भौतिक संसाधन हैं, यदि बाजार इन मूल्यों को चुकाने के लिए तैयार नहीं हो? क्रिसिल के मुख्य अर्थशास्त्री डीके जोशी का आकलन है कि यदि सरकारी खरीद पिछले साल के स्तर पर ही की जाती है तो मौजूदा एमएसपी से सरकारी खजाने पर 11,500 करोड़ रुपए का बोझ पड़ेगा। लेकिन चूँकि न्यूनतम समर्थन मूल्य बाजार कीमतों से उच्च होंगे, लिहाजा सरकारी खरीद और ज्यादा हो सकती है, इससे इसकी लागत और बढ़ेगी।

हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि एमएसपी में इजाफा व कर्ज माफी योजनाओं की जरूरत नहीं। लेकिन महज इतना करना ही काफी नहीं। जिस तरह पैरासिटामोल से हमें बुखार में राहत तो मिल जाती है, लेकिन इससे बीमारी के कारणों का निदान नहीं होता। किसान बदहाल हैं, क्योंकि उनके कार्य से जुड़े हर पहलू पर सरकार का कुछ ज्यादा ही नियंत्रण है। ऐसे में उनकी मदद के लिए बनाई जाने वाली योजनाएँ आखिरकार उन्हें ही चोट पहुँचाने लगती हैं। इसकी एक प्रमुख मिसाल कृषि उत्पाद विपणन समितियों की मोनोपॉली है, जिससे किसान आढ़तियों के रहमोकरम पर निर्भर होकर रह गए हैं। किसानों के पास तो यह पता करने के भी समुचित स्रोत नहीं हैं कि विभिन्न बाजारों (यहाँ तक कि राज्य में ही) में क्या भाव चल रहे हैं।

छोटे किसान कर्ज के लिए महाजनों और अन्य अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर हैं, क्योंकि ऐसे ज्यादातर बटाईदार किसान होते हैं और उनके पास पट्टे का औपचारिक अनुबंध नहीं होता। लिहाजा वित्त के औपचारिक स्रोतों तक उनकी पहुँच नहीं होती। अनौपचारिक बटाईदार प्रक्रिया को नियमित करने का कोई समुचित तंत्र नहीं है।

GS World
Committed To Excellence

(एमएसपी) में बढ़ोतरी ने पार्टी के वोट प्रबंधकों, पन्ना प्रमुखों आदि के लिए प्रचार का चारा डाल दिया है। यह पार्टी को उन परेशानियों और अलगाव को खत्म करने के लिए एक अवसर देता है।

आप तर्क दे सकते हैं कि यूपीए ने 2008 में एमएसपी में बढ़ोतरी की थी। लेकिन एमएसपी की बढ़ोतरी की पैकेजिंग एवं मार्केटिंग में अंतर है। यह चुनावी लाभांश के लिए राजनीतिक उड़ान मार्ग के साथ हेलीकॉप्टर अर्थशास्त्र है। राजनीतिक भूगोल पर फसल-दर-फसल एमएसपी वृद्धि के खात्मे की सराहना के लिए उन राज्यों पर नजर डालें, जहाँ भाजपा ने अच्छा प्रदर्शन नहीं किया और जहाँ उसे चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

सबसे पहले धान की राजनीतिक अर्थव्यवस्था को लेते हैं। रकबा और उत्पादन के हिसाब से धान भारत की सबसे प्रमुख फसल है, जिसकी खेती 4.4 करोड़ हेक्टेयर में होती है और 11.1 करोड़ टन उत्पादन होता है। उत्पादन सूची के शीर्ष बारह बड़े राज्यों-पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, ओडिशा, असम, हरियाणा, मध्य प्रदेश और तेलंगाना में 86 फीसदी से ज्यादा उत्पादन होता है। इस सूची में दो चुनावी राज्य भी शामिल हैं और 336 या 62 फीसदी लोकसभा सीट हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन बारह में से आठ राज्यों में भाजपा ने इकाई अंक में सीटें जीती थीं। उत्तर प्रदेश और बिहार में, जहाँ भाजपा ने 2014 में अच्छा प्रदर्शन किया था, वहाँ उसे उग्र चुनौतियों और मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ में पंद्रह वर्ष की सत्ता-विरोधी रुझान का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा इन बारह राज्यों के 115 पिछड़े जिलों में 73 अब 'महत्त्वाकांक्षी जिलों' के रूप में जाने जाते हैं।

ज्वार, बाजरा और रागी का चुनावी अर्थशास्त्र क्या है? मोटे अनाज, जिन्हें अब पोषक अनाज कहा जाता है, सिंचाई की कमी वाले क्षेत्रों में उगाए जाते हैं और मनुष्यों के पोषण के साथ पशुओं के लिए चारा प्रदान करते हैं। महाराष्ट्र, जहाँ भाजपा संभावित कांग्रेस और राकांपा गठबंधन और मौसमी मित्र शिवसेना के गुस्से का सामना कर रही है, ज्वार का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। जिन अन्य राज्यों में ऐसी ही स्थिति है, उनमें चुनावी राज्य मध्य प्रदेश, राजस्थान और राजनीतिक रूप से उर्वर तमिलनाडु शामिल हैं।

बाजरा को मोती बाजरा भी कहा जाता है, जो पोषण के लिए महत्त्वपूर्ण है और ज्यादातर सूखे मौसम वाले इलाकों में, जहाँ वार्षिक वर्षा 100 सेंटीमीटर से कम होती है, उगाया जाता है। उत्पादन सूची के पाँच शीर्ष राज्य हैं-राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, हरियाणा और मध्य प्रदेश। ज्वार और बाजरा की तरह रागी कम वर्षा वाले क्षेत्रों की फसल है और इसका सबसे ज्यादा उत्पादन कर्नाटक में होता है, जहाँ भाजपा सत्ता पाने में विफल रही। मक्का लागत से कई गुना ज्यादा लाभ देने वाली फसल है-किसान धान की तुलना में इसकी खेती में 90 फीसदी पानी और 70 फीसदी ऊर्जा की बचत कर सकते हैं। इसके पाँच शीर्ष उत्पादकों में कर्नाटक, चुनावी राज्य मध्य प्रदेश, चुनौतीपूर्ण राज्य बिहार और विपक्ष शासित तमिलनाडु और तेलंगाना शामिल हैं।

वर्ष 2014 से भाजपा ने आर्थिक उपायों को अपने राजनीतिक एवं चुनावी एजेंडे से जोड़ा है और छह से 21 राज्यों में अपनी सत्ता का विस्तार किया है। गुजरात चुनाव से पहले जीएसटी दरों का पुनर्निर्धारण और उत्तर प्रदेश व कर्नाटक में कर्जमाफी की घोषणा इसके उदाहरण हैं। नीति के क्रियान्वयन का समय पहली बार 2014 में एमएसपी को 1.5 गुना करने का वायदा किया था, जिसे 2018 में पूरा किया गया और चीजों को चतुराई पूर्वक ढालना महत्त्वपूर्ण है। राजकोषीय सुधार पर भाजपा का दोहरा रुख है-राज्यों ने मिलकर जब 1.6 लाख करोड़ का कर्ज माफ कर दिया, तो केंद्र ने उसमें हस्तक्षेप नहीं किया।

चुनावी लोकप्रियता की लागत चिंता की बात है। यह सही है कि उच्च एमएसपी, यदि छोटे किसानों तक पहुँचाया जाता है तो ग्रामीण उपभोग के साथ खाद्य सुरक्षा और भारत की कहानी को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी। हालाँकि इससे राष्ट्रीय खजाने पर अनुमानित 35 हजार करोड़ रुपये का बोझ पड़ेगा। उच्च उधार और बड़े ऋण की कीमत ब्याज दर और मुद्रा के मूल्य पर असर डालेगी।

फिर मूल्य निर्धारण नीति में शहरी उपभोक्ताओं की पक्षधरता का भी मामला है। जैसे ही किसी उत्पाद की कीमतें शहरी उपभोक्ताओं को चुभने लगती हैं, सरकार प्रतिक्रियास्वरूप निर्यात प्रतिबंधित करने, आयात में ढील देने और उसका स्टॉक रखने की सीमा निर्धारित करने जैसे कदम उठाने लगती है। इससे किसानों के लिए कीमतें गिर जाती हैं।

इस संदर्भ में साख बाजार, भूमि बाजार सुधार समेत विपणन संबंधी सुधार करने भी जरूरत है। मौजूदा केंद्र सरकार ने ऐसे कुछ सुधार शुरू किए भी हैं, पर वह राज्य सरकारों को इसके लिए तैयार नहीं कर पा रही है। लेकिन इन बदलावों के बगैर, एमएसपी में वृद्धि और कृषि कर्ज माफी जैसी कवायदें भी किसानों के लिए दीर्घकाल में मददगार साबित नहीं होंगी।

## सूखे में हो रही बारिश ( प्रभात खबर )

किसान खुशहाल हो गये! अब किसान नेता अपने-अपने आंदोलन वापस ले लें. सूखे के आँकड़ों की ऐसी बारिश हुई है कि धरती आप्लावित हो गयी है। प्रधानमंत्री ने कबीर-भूमि पर जाकर शताब्दियों का ऐसा कॉकटेल बनाया कि इतिहास और इतिहासकार सभी चारों खाने चित हो गये.

उन्होंने 'मेरे किसान भाइयों' की तरफ नजर घुमायी और एक ऐसी लकीर खींच दी कि किसान इधर और समस्याएँ उधर रह गयीं. किसानों को कर्जमाफी का इंतजार था, प्रधानमंत्री ने उनके खेतों में 'द्रौपदी का बटुआ' गाड़ दिया!

मौका इतना बड़ा माना गया कि प्रेस से बात करने खुद गृह मंत्री को बिठाया गया। गृह मंत्री ने इतिहास को टांग मारते हुए कहा कि किसानों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में इतनी बड़ी वृद्धि कभी नहीं की गयी थी! हमने इतिहास खंगाला, तो तथ्य निकला कि हर आम चुनाव से पहले 'द्रौपदी का बटुआ' इसी तरह खोला जाता रहा है और अपनी सुविधा की फसलों का समर्थन मूल्य बढ़ाया जाता रहा है।

साल 2008-09 और फिर 2012-13 के चुनावी-दौर में भी ऐसी ही बड़ी वृद्धि की गयी थी। तब उनकी सुविधा की 11 फसलें कुछ दूसरी थीं, इस सरकार की सुविधा की छह फसलें दूसरी हैं। इस सरकार ने जिन फसलों को चुना है- गेहूँ, सोयाबीन, मक्का, दलहन, कपास और बाजरा- ये वे फसलें हैं जिनकी पैदावार उन इलाकों में ज्यादा होती हैं, जिनमें चुनाव आनेवाले हैं। बाजरा, रागी, मूँग, तुअर आदि की खरीदी सरकार कितना करती रही है, यह आँकड़ा देखें, तो इन घोषणाओं की पोल खुल जाती है। न्यूनतम मूल्य तो सरकार देनेवाली है न, बाजार नहीं. सरकार जिसे खरीदती नहीं है या कम खरीदती है और बाजार जिनकी खरीद में सबसे ज्यादा लूट करता है, उसकी खरीद के न्यूनतम मूल्य में वृद्धि कितना बड़ा धोखा है!

सरकार में शक्ति नहीं है कि वह नौकरशाही के भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा सके, तो उससे यह उम्मीद ही कैसे की जा सकती है कि वह बाजार और नौकरशाही की मिलीभगत से चलनेवाली लूट को रोक सकेगी? मतलब सीधा है कि सरकार ने एमएसपी में वृद्धि इस लूट को ज्यादा फलप्रद बनाने के लिए और उन शक्तिमान किसानों को लाभ पहुँचाने के लिए की है, जिनके बारे में कहा जाता है कि किसान आंदोलनों की चोटी इनके ही हाथ में है। देश का किसान आंदोलन इतनी बुरी तरह टूटा हुआ है कि राजनीतिक दलों की बैसाखी के बिना चल ही नहीं पाता है। कोटा (राजस्थान) में हड़ौती किसान के आमंत्रण पर जब मैं एक किसान सभा में किसानों को उनकी भूमिका बदलने के लिए सजग कर रहा था, तब एक संभ्रांत किसान ने कहा था- 'किस किसान को आप संबोधित कर रहे हैं? यहाँ कांग्रेसी किसान हैं, भाजपाई किसान हैं, समाजवादी व बसपाई किसान हैं, लेकिन आप जिसको खोज रहे हैं, वैसा किसान अब नहीं मिलेगा!' यही वह सत्य है, जिसे सरकार ने निशाने पर रखकर एमएसपी का निर्धारण किया है।

कृषि संकट को लेकर विवाद नहीं है। इसी तरह सिर्फ उच्च एमएसपी इस संकट को खत्म नहीं करेगी। कृषि का पुनरुद्धार इसकी मुक्ति की माँग करता है, एक सक्षम पारिस्थितिकी तंत्र बनाने के लिए राज्यों द्वारा प्रौद्योगिकी और सुधारों को शामिल करना भी जरूरी है। सिर्फ विचार पैदा करना पर्याप्त नहीं है। कृषि के लिए राष्ट्रीय बाजार और निवेश को बढ़ावा देने के लिए समूह/सामूहिक/अनुबंध खेती के लिए कानूनी प्रारूप तैयार करना, प्रति एकड़ उपज और किसानों की आय का मुद्दा केंद्र और राज्य के बीच, इरादे और अमल के बीच फँसा हुआ है।

एक सनकी दृष्टिकोण के कारण कृषि क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से पीड़ित है, क्योंकि यह राजनीतिक दान का मामला है। यदि आधी से ज्यादा आबादी राष्ट्रीय आय के 15 फीसदी से कम पर जी रही है तो विकास शायद ही मजबूत हो सकता है। इसके लिए राज्यों से निरंतरता, स्थिरता और सहयोगी प्रयास की जरूरत है। निश्चित रूप से राज्यों में चुनावी जीत कर्जमाफी और एमएसपी में वृद्धि से ज्यादा होनी चाहिए-कम से कम खुद को अलग बताने वाली पार्टी ने एक अलग रुख तो अपनाया!

## गलत सुझाव ( बिजनेस स्टैंडर्ड )

कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (सीएसीपी) ने सुझाव दिया है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) को किसानों का कानूनी अधिकार बना दिया जाए। यह सलाह गलत और अव्यावहारिक है। बीते छह दशकों में पर्याप्त विस्तार के बावजूद देश में फसलों की सरकारी खरीद का बुनियादी ढाँचा सीमित क्षेत्रों तक सीमित रहा है। इस दौरान चुनिंदा फसलों के बमुश्किल एक तिहाई उत्पादकों की उपज ही खरीदी जाती रही है। ऐसे में इसे सभी क्षेत्रों में और पारंपरिक रूप से घोषित 23 फसलों के लिए कानूनी रूप दे पाना व्यावहारिक नहीं लगता। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि एमएसपी को आधारभूत उत्पादन लागत से 50 फीसदी अधिक करने के बाद राशि किसानों को नहीं मिलेगी। मौजूदा खुली खरीद की प्रक्रिया ऐसा करने का उचित तरीका नहीं है। यह मूल्य समर्थन की घाटे वाली व्यवस्था है जो अपेक्षाकृत बड़े किसानों को फायदा पहुँचाती है क्योंकि उनका विपणन लायक फसल अधिशेष ज्यादा होता है। इस व्यवस्था की खामियाँ कीमतों में विसंगति, फसल बुआई के रुझान में बदलाव और चावल-गेहूँ जैसे अन्न तथा दालों के भारी भंडार के रूप में सामने आई हैं।

निश्चित तौर पर सरकारी खरीद आधारित बाजार समर्थन के विकल्पों की कोई कमी नहीं है। बल्कि सीएसीपी ने खुद कुछ विकल्पों का जिक्र किया है जिन्हें वह मौजदा व्यवस्था से बेहतर मानती है। सरकार के नीतिगत थिंकटैंक नीति आयोग ने भी कुछ नए विचार पेश किए हैं जिन्हें आजमाया जा सकता है। एक तरीका जिसे सीएसीपी और नीति आयोग दोनों का समर्थन मिला है, वह है भावांतर भुगतान योजना। यह योजना मध्य प्रदेश तथा कुछ अन्य राज्यों में लागू की जा चुकी है। इस योजना के तहत किसानों को केवल मूल्य राशि में हो रहे नुकसान का भुगतान किया जाता है, शेष बाजार गतिविधियाँ यथावत रहती हैं। सीएसीपी का कहना है कि यह तरीका किफायती है। उसने इसे देशव्यापी स्तर पर अपनाए जाने की वकालत की है। हालाँकि इस व्यवस्था में भी समस्याएँ हैं लेकिन वे ऐसी नहीं हैं कि उनसे निजात नहीं पाई जा सके।

सरकार की ओर से किसानों को फसल की आकर्षक कीमत दिलाने के लिए जो भी योजनाएं चलाई जा रही हैं उनकी कुछ न कुछ वित्तीय कीमत चुकानी पड़ती है। यह कीमत बाजार दरों और फसल की कवरेज के हिसाब से साल दर साल अलग-अलग हो सकती हैं। फसल कटाई के बाद उसकी कीमतों में भारी गिरावट समस्या बनी हुई है। ऐसा प्रमुख तौर पर बाजार की गड़बड़ियों और कृषि बाजार को लेकर समुचित बुनियादी ढाँचा नहीं होने की वजह से होता है। जब तक कृषि विपणन में जरूरी सुधार नहीं होंगे तब तक बिचौलियों के द्वारा, ग्रामीण बाजारों के कारोबारियों द्वारा अथवा कृषि उपज विपणन समितियों द्वारा संचालित मंडियों के द्वारा किसानों का शोषण जारी रहेगा। बीते कुछ दशकों में कृषि उत्पादन में तो जबरदस्त वृद्धि हुई है लेकिन मंडियों का नेटवर्क उस तेजी से नहीं विकसित हो सका है। आधिकारिक अनुमान बताते हैं कि 80 प्रतिशत से अधिक छोटे और सीमाँत किसानों को अपनी उपज गाँव के हाट में बेचनी पड़ती है क्योंकि उनके आसपास मंडी नहीं है। इस वर्ष के बजट में 22,000 से अधिक हाटों का उन्नयन कर उन तक सड़क बनाने का प्रस्ताव रखा गया है। अच्छी बात यह है कि इन्हें एपीएमसी अधिनियम की निगरानी से बाहर रखा जा रहा है। किसानों और खुदरा शृंखलाओं तथा कृषि प्रसंस्करण उद्योगों के बीच सीधे लेन-देन को भी प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इससे बिना महँगाई बढ़ाए किसानों को उपज के अच्छे दाम मिलने तय होंगे। जब तक उत्पादन, माँग और आपूर्ति का तालमेल नहीं बनेगा तब तक उपज पैदा होने के बाद कीमतों में आने वाली गिरावट को रोकना मुश्किल होगा। किसानों को फसल के अच्छे दाम न मिलने की यह बड़ी वजह है।

आप खुद सोचिए न कि प्रधानमंत्री सार्वजनिक रूप से स्वीकार करते हैं कि रोजगार तो बहुत बढ़ा है, लेकिन उसके आँकड़े हमारे पास नहीं हैं।

प्रधानमंत्री की इस बात से जो भयंकर सत्य बाहर आता है, वह यह है कि सरकार के पास आँकड़े जुटाने और उन आँकड़ों के आधार पर गणित बनाने का तंत्र नहीं है। फिर तो पूछना ही चाहिए कि जिस सरकार के पास आँकड़े जुटाने का तंत्र भी नहीं है, वह करोड़ों किसानों के कृषि-खर्च, बीज-खाद-पानी की जरूरत, कर्ज, खेती में हुए नुकसान, भरपाई की हैसियत और आत्महत्या के शिकारों के आँकड़े कैसे प्राप्त करती है और उस आधार पर एमएसपी भी तय कर लेती है? क्या यह सच नहीं है कि किसान जिस जमीन पर जीता-मरता, पसीने बहाता, अन्न उगाता है और फिर लाखों की संख्या में आत्महत्या कर लेता है, उस गाँव-जमीन तक सरकार की कोई पहुँच नहीं है?

और क्या यह भी उतना ही बड़ा सच नहीं है कि गाँव-कस्बे की जिस मंडी में जीवन-मौत का यह सौदा होता है, वहाँ सरकार की कोई हैसियत नहीं है? नौकरशाही प्रायोजित दौरों से, हेलिकॉप्टरों के हवाई सर्वेक्षणों से और चमकीली चुनावी रैलियों से जो गाँव देखे जाते हैं, उनका असलियत से कोई रिश्ता नहीं होता है।

सच यह है कि एमएसपी केवल छह प्रतिशत किसानों तक पहुँचता हैं। 94 प्रतिशत किसान इस तंत्र तक पहुँच भी नहीं पाते हैं और न उनमें इतनी ताकत होती है। देश के गाँवों-कस्बों में दलालों की दुरभिसंधि खुले आम बनी हुई है, जो लाचार किसानों को कहती है कि न्यूनतम मूल्य बाजार में मिलेगा नहीं, न्यूनतम मूल्य की घोषणा करनेवाली सरकारी व्यवस्था बनी नहीं है, कब और कैसे बनेगी हम जानते नहीं हैं।

नकद पैसा चाहिए, तो हमारी कीमत पर अनाज उतार जाओ और नकद पैसा ले जाओ. सौदा हो जाता है, किसान अपना कफन खरीदकर घर लौट जाता है। फिर दलालों की चांडाल-चौकड़ी उस अनाज को अपनी टीम के 'सरकारी अधिकारी' को न्यूनतम मूल्य पर बेचता है और दोनों अपने-अपने हिस्से की कमाई संभालते घर चले जाते हैं।

यह अगर सच नहीं है, तो न्यूनतम मूल्य की घोषणा करनेवाली बहादुर सरकार बताये कि किसानों की आत्महत्या में न्यूनतम गिरावट भी क्यों नहीं आ रही है? पैदावार बढ़ी है, लेकिन बाजार में अनाज की जगह क्यों नहीं है?

सरकारों का भोग-विलास अविश्वसनीय सीमा छू रहा है, लेकिन किसानों की दरिद्रता का चक्र थम नहीं रहा है। तो सरकारी विशेषज्ञ क्या रास्ता निकाल रहे हैं? जवाब एक ही है- चुनाव के मद्देनजर ऐसे सवाल नहीं पूछे जाते! सूखे में हो रही इस बारिश का यही सच है।

Committed To Excellence

## सारांश

- स्वामीनाथन आयोग ने खेती की सभी प्रकार की लागतों को जोड़कर जिसे सी-2 लेवल कहा जाता है, इसमें 50 फीसद और जोड़ने की बात कही थी मगर सरकार ने ए-2 जमा परिवार की मजदूरी में 50 फीसद जोड़कर एमएसपी घोषित किया है।
- सरकार ने एक दावा यह भी किया है कि भारत के इतिहास में पहली बार समर्थन मूल्यों की घोषणा फसल की बुवाई से पहले की जा रही है। सच यह है कि ऐसी व्यवस्था 1986 से लागू है।
- सरकार ने यह दावा किया है कि उसने किसानों को नीम लेपित यूरिया पहली बार उपलब्ध कराया है। यह पिछले लगभग एक दशक से किसानों को मिलता रहा है।
- सरकार ने यह दावा किया है कि वर्ष 2022 तक किसानों की आमदनी दोगुनी कर दी जाएगी। पिछले चार वर्ष का रिकार्ड देखें तो कृषि क्षेत्र की औसत विकास दर 2.2 फीसद रही है। यदि किसानों की आय आगामी चार सालों में दोगुना करनी है तो यह दर 20 फीसद प्रति वर्ष करनी होगी, जिसके लिए खेती में निवेश वर्तमान के मुकाबले 10 गुना बढ़ाना होगा।
- एमएसपी तय करने की आदर्श स्थिति तो यह है कुल लागत में खेती का खर्च भी जोड़ा जाए क्योंकि आजकल बड़ी संख्या में किसान किराए पर जमीन लेकर खेती कर रहे हैं।
- सत्तारूढ़ दल ने 2014 के चुनावी घोषणापत्र में यह लिखित वचन दिया था कि वह स्वामीनाथन आयोग की उस सिफारिश को सत्ता में आते ही लागू करेगी, जिसमें किसानों को सी-2 लागत (फसल की हर मद को जोड़ते हुए कुलजमा लागत) के ऊपर 50 प्रतिशत जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य देने की बात कही गई थी।
- 2015 में जब इस संदर्भ में एक जनहित याचिका सर्वोच्च न्यायालय में डाली गई, तब अपने जवाब में केंद्र सरकार ने एक शपथ पत्र दाखिल किया कि यह व्यावहारिक नहीं है और वर्तमान संसाधनों में संभव भी नहीं है।
- 1965 में एमएसपी ईजाद की गई थी, यह दो जिसों पर लागू होने के साथ शुरू हुआ, मगर अब जिंसों की संख्या बढ़कर 20 से अधिक हो चुकी है।
- सरकार का कहना है कि कीमतों में किए जाने वाले इस इजाफे से सरकार पर करीब 335 अरब रुपये का अतिरिक्त वित्तीय बोझ पड़ेगा। यह सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 0.2 फीसदी के बराबर है।
- एमएसपी वह मूल्य है, जिस पर सरकार किसानों से उनकी उपज खरीदती है। एमएसपी की शुरुआत किसानों को गेहूँ, चावल जैसी फसलों का उत्पादन बढ़ाने को प्रेरित करने के लिए की गई थी।
- रकबा और उत्पादन के हिसाब से धान भारत की सबसे प्रमुख फसल है, जिसकी खेती 4.4 करोड़ हेक्टेयर में होती है और 11.1 करोड़ टन उत्पादन होता है। उत्पादन सूची के शीर्ष बारह बड़े राज्यों-पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, ओडिशा, असम, हरियाणा, मध्य प्रदेश और तेलंगाना में 86 फीसदी से ज्यादा उत्पादन होता है।
- मोटे अनाज, जिन्हें अब पोषक अनाज कहा जाता है, सिंचाई की कमी वाले क्षेत्रों में उगाए जाते हैं और मनुष्यों के पोषण के साथ पशुओं के लिए चारा प्रदान करते हैं। महाराष्ट्र, ज्वार का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। बाजरा को मोती बाजरा भी कहा जाता है, जो पोषण के लिए महत्त्वपूर्ण है और ज्यादातर सूखे मौसम वाले इलाकों में, जहाँ वार्षिक वर्षा 100 सेंटीमीटर से कम होती है, उगाया जाता है। उत्पादन सूची के पाँच शीर्ष राज्य हैं-राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, हरियाणा और मध्य प्रदेश। ज्वार और बाजरा की तरह रागी कम वर्षा वाले क्षेत्रों की फसल है और इसका सबसे ज्यादा उत्पादन कर्नाटक में होता है
- मक्का लागत से कई गुना ज्यादा लाभ देने वाली फसल है-किसान धान की तुलना में इसकी खेती में 90 फीसदी पानी और 70 फीसदी ऊर्जा की बचत कर सकते हैं। इसके पाँच शीर्ष उत्पादकों में कर्नाटक, मध्य प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु और तेलंगाना शामिल हैं।
- कर्ज माफी योजनाओं से सिर्फ उन्हीं किसानों को फायदा मिल पाता है जो किसी सरकारी या सहकारी संस्था अथवा बैंक जैसे संस्थागत स्रोत से कर्ज लेते हैं। इन कर्ज माफी योजनाओं का एक बड़ा हिस्सा बड़े किसानों के खाते में चला जाता है। सीमाँत किसान, जिनके पास एक हेक्टेयर से भी कम जमीन है और जो कुल किसानों के तकरीबन 67 फीसदी हैं, अपने ज्यादातर कर्जे महाजनों या सूदखोरों, रिश्तेदारों, व्यापारियों और भू-स्वामियों से लेते हैं और इस तरह वे कर्ज माफी योजनाओं के दायरे से बाहर रह जाते हैं।
- कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (सीएसीपी) ने सुझाव दिया है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) को किसानों का कानूनी अधिकार बना दिया जाए।
- एक तरीका जिसे सीएसीपी और नीति आयोग दोनों का समर्थन मिला है, वह है भावांतर भुगतान योजना। यह योजना मध्य प्रदेश तथा कुछ अन्य राज्यों में लागू की जा चुकी है। इस योजना के तहत किसानों को केवल मूल्य राशि में हो रहे नुकसान का भुगतान किया जाता है, शेष बाजार गतिविधियाँ यथावत रहती हैं। सीएसीपी का कहना है कि यह तरीका किफायती है। उसने इसे देशव्यापी स्तर पर अपनाए जाने की वकालत की है।
- एमएसपी केवल छह प्रतिशत किसानों तक पहुँचता है। 94 प्रतिशत किसान इस तंत्र तक पहुँच भी नहीं पाते हैं

## स्वामीनाथन आयोग

- प्रोफेसर एम.एस. स्वामीनाथन को अपने देश में हरित क्रांति का जनक कहा जाता है। स्वामीनाथन जेनेटिक वैज्ञानिक हैं। तमिलनाडु के रहने वाले इस वैज्ञानिक ने 1966 में मेक्सिको के बीजों को पंजाब की घरेलू किस्मों के साथ मिश्रित करके उच्च उत्पादकता वाले गेहूँ के संकर बीज विकसित किए. यूपीए सरकार ने किसानों की स्थिति का जायजा लेने के लिए एक आयोग का गठन किया, जिसे स्वामीनाथन आयोग कहा गया।
- अनाज की आपूर्ति को भरोसेमंद बनाने और किसानों की आर्थिक हालत को बेहतर करने के मकसद से 18 नवंबर, 2004 को केंद्र सरकार ने एमएस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय किसान आयोग का गठन किया था। इस आयोग ने पाँच रिपोर्ट सौंपी थीं।
- इन रिपोर्टों में 'अधिक तेज तथा अधिक समावेशी विकास' की प्राप्ति के लिये उपाय सुझाये गये थे जो 11वीं पंचवर्षीय योजना का एक लक्ष्य था।

- स्वामीनाथ आयोग की रिपोर्ट में भूमि सुधारों को बढ़ाने पर जोर दिया गया है। अतिरिक्त और बेकार जमीन को भूमिहीनों में बाँटना, आदिवासी क्षेत्रों में पशु चराने का हक देना आदि है। बेकार पड़ी और अतिरिक्त (सरप्लस) जमीनों की सीलिंग और बँटवारे की सिफारिश की गई थी। इसके साथ ही खेतीहर जमीनों का गैर कृषि इस्तेमाल पर चिंता जताई गई थी। जंगलों और आदिवासियों को लेकर भी विशेष नियम बनाने की बात कही गई थी। साथ ही राष्ट्रीय भूमि उपयोग और सलाह सेवा की स्थापना की बात भी थी। इसका काम पारिस्थितिकी, मौसम और बाजार को देखना होता।
- आयोग की सिफारिशों में किसान आत्महत्या की समस्या के समाधान, राज्य स्तरीय किसान कमीशन बनाने, सेहत सुविधाएं बढ़ाने और वित्त-बीमा की स्थिति पुख्ता बनाने पर भी विशेष जोर दिया गया है। यदि इसे लागू किया जाए तो किसानों की स्थिति में काफी सुधार की संभावना है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) औसत लागत से 50 फीसदी ज्यादा रखने की सिफारिश भी की गई है ताकि छोटे किसान भी मुकाबले में आएँ, यही इसका मकसद है। किसानों की फसल के न्यूनतम समर्थन मूल्य कुछेक नकदी फसलों तक सीमित न रहें, इस लक्ष्य से ग्रामीण ज्ञान केंद्र और बाजार का दखल स्कीम भी लॉन्च करने की सिफारिश की गई है।
- आयोग द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों में छोटे एवं सीमाँत किसानों के मध्य कृषि क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा का माहौल बनाए जाने के प्रयास किये जाने चाहिये, ताकि उनकी उत्पादकता में वृद्धि की जा सके। कमोडिटी आधारित छोटे किसान संगठनों उदाहरण के तौर पर, लघु कपास किसान एस्टेट आदि को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।
- सिंचाई व्यवस्था को लेकर भी आयोग ने चिंता जताई थी। साथ ही सलाह दी थी कि सिंचाई के पानी का उपलब्धता सभी के पास होनी चाहिए। इसके साथ ही पानी की सप्लाई और वर्षा-जल के संचय पर भी जोर दिया गया था। पानी के स्तर को सुधारने पर जोर देने के साथ ही 'कुआँ शोध कार्यक्रम' शुरू करने की बात कही गई थी।
- आयोग का कहना था कि कृषि में सुधार के लिए एक समग्र प्रयत्न की जरूरत है। इसमें लोगों की भूमिका को बढ़ाना होगा। इसके साथ ही कृषि से जुड़े सभी कामों में 'जन सहभागिता' / पब्लिक इंवेस्टमेंट की जरूरत होगी। चाहें वह सिंचाई हो, जल-निकासी हो, भूमि सुधार हो, जल संरक्षण हो या फिर सड़कों और कनेक्टिविटी को बढ़ाने के साथ शोध से जुड़े काम हों।

## न्यूनतम समर्थन मूल्य

- न्यूनतम समर्थन मूल्य भारत सरकार द्वारा कृषि उत्पादकों को कृषि उत्पादों के मूल्यों मंस किसी तीव्र गिरावट के विरुद्ध सुरक्षित किए जाने वाले बाजार हस्तक्षेप का एक रूप है। भारत सरकार द्वारा कृषि लागत और मूल्य आयोग (CACP) की अनुशंसाओं के आधार पर कुछ फसलों के बुवाई सत्र के आरम्भ में न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की जाती है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य भारत सरकार द्वारा उत्पादकों, किसानों को अत्यधिक उत्पादन वर्षों में मूल्यों में अत्यधिक गिरावट के विरुद्ध सुरक्षित करने के लिए नियत किया गया मूल्य है। न्यूनतम समर्थन मूल्य का मुख्य उद्देश्य किसानों का मजबूरन सस्ते कीमत पर फसल बिक्री करने से बचाना और सार्वजनिक वितरण के लिए खाद्यान्न की अधिप्राप्ति करना है। यदि किसी फसल के लिए बाजार मूल्य ,बम्पर उत्पादन होने या बाजार में अधिकता होने के कारण घोषित मूल्य की तुलना में अत्यधिक गिर जाते हैं तो सरकारी एजेंसियाँ किसानों द्वारा प्रस्तुत की गई संपूर्ण मात्रा को घोषित किए गए न्यूनतम मूल्य पर खरीद लेती है।
- भारत सरकार द्वारा, कृषि लागत और मूल्य आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर कुछ फसलों के बुवाई सत्र के आरम्भ में ही न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा किये जाने का प्रावधान है ।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य का मुख्य उद्देश्य किसान भाइयों को मजबूरीवश सस्ते कीमतों पर अनाज बिक्री से बचाना और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (P.D.S.) के लिए खाद्यान्न की खरीद करना है, यदि किसी फसल के लिए बाजार मूल्य, बम्पर उत्पादन होने या बाजार में अधिकता होने के कारण घोषित मूल्य की तुलना में अत्यधिक गिर जाते हैं तो सरकारी एजेंसियाँ किसानों द्वारा प्रस्तुत की गई संपूर्ण मात्रा को घोषित किए गए न्यूनतम मूल्य पर खरीद लेती है
- वर्तमान में सरकार 25 फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा करती है जिसमें सात अनाज (धान, गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का और रागी); पाँच दालें (चना, अरहर, मूँग, उड़द, और मसूर); आठ तिलहन (मूँगफली, सरसों, तोरिया, सोयाबीन के बीज, कुसुम्भी (Safflower) और खुरसाणी (Niger Seed)); नारियल, कच्चा कपास, कच्चा जूट, गन्ना और वर्जीनिया फ्लू उपचारित (B.F.C.) तम्बाकू सम्मिलत हैं।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य के स्तर के सम्बन्ध में अनुशंसाएँ निर्मित करते समय C- A- C- P- निम्न बिन्दुओं पर निर्भर करता है। उत्पादक की लागत, इनपुट मूल्यों में परिवर्तन, इनपुट आउटपुट मूल्य समता, बाजार कीमतों की प्रवृतियाँ, माँग और आपूर्ति, अंतर फसल मूल्य समता, औद्योगिक लागत संरचना पर प्रभाव, जीवन-यापन लागत पर प्रभाव, सामान्य मूल्य स्तर पर प्रभाव, अंतर्राष्ट्रीय मूल्य स्थिति, किसानों द्वारा भुगतान किए गए और प्राप्त किए गए मूल्यों के बीच समता और निर्गम मूल्यों पर प्रभाव। आयोग जिले ,राज्य और देश के स्तर पर लघु ख्र स्तरीय आँकड़ों एवम समग्र आँकड़ो का उपयोग करते हुए मूल्य निर्धारण करता है।
- नीति आयोग ने एमएसपी को लागू करने के लिये पिछले महीने राज्यों को तीन योजनाओं का सुझाव दिया था।

1. मूल्य कमी खरीद योजना-मूल्य कमी खरीद योजना के अंतर्गत एमएसपी और प्राप्त वास्तविक मूल्य के बीच अंतर के लिये किसान को मुआवजा दिया जा सकता है।
2. निजी खरीद और स्टॉकिस्ट योजना-निजी खरीद और स्टॉकिस्ट योजना के अंतर्गत सरकार किसानों से कृषि उपज खरीदने के लिये निजी क्षेत्र व व्यापारियों को कर में छूट एवं अन्य सुविधाएँ प्रदान कर प्रोत्साहित करती है।
3. बाजार आश्वासन योजना-बाजार आश्वासन योजना राज्यों द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य पर कृषि खरीद करने का प्रस्ताव करती है, जिसमें एक निश्चित सीमा तक हानि होने पर केंद्र सरकार द्वारा उसकी क्षतिपूर्ति की जाती है।

- कृषि लागत एवं मूल्य आयोग भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय का एक संलग्न कार्यालय है। यह आयोग 1965 में अस्तित्व में आया। यह कृषि उत्पादों के संतुलित एवं एकीकृत मूल्य संरचना तैयार करने के उद्देश्य से स्थापित किया गया। आयोग कृषि उत्पादों के न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सलाह देता है। आयोग के द्वारा 24 कृषि फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य जारी किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त गन्ने के लिये न्यूनतम समर्थन मूल्य की जगह उचित एवं लाभकारी मूल्य की घोषणा की जाती है। गन्ने का मूल्य निर्धारण आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति द्वारा अनुमोदित किया जाता है।

# PT / Mains - प्रश्न

## संभावित प्रश्न

1. हाल ही में सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्यों में 50 प्रतिशत वृद्धि की घोषणा की है जो आधारित है-
   (a) स्वामीनाथन आयोग की सिफारिश पर
   (b) अभिजित सेन आयोग की सिफारिश पर
   (c) आबिद हुसैन आयोग की सिफारिश पर
   (d) हनुमंत राव आयोग की सिफारिश पर

   (उत्तर-A)

2. न्यूनतम समर्थन मूल्यों के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. इसकी शुरुआत वर्ष 1965 से हुई है।
   2. वर्तमान में यह कुल 25 फसलों के लिए उपलब्ध है।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

3. वर्तमान में सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्यों की व्यवस्था निम्नलिखित में से किन फसलों के लिए है?
   1. मसूर 2. रागी
   3. नारियल 4. जूट

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) केवल 1 और 2
   (b) केवल 1, 2 और 3
   (c) 1, 2, 3 और 4
   (d) केवल 1 और 2

   (उत्तर-C)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत सरकार, कृषि लागत और मूल्य आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर कुछ फसलों की बुआई सत्र के आरंभ में ही न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित कर देती है।
   2. न्यूनतम समर्थन मूल्य का लक्ष्य किसानों को मजबूरन सस्ते दाम पर फसल बेचने से बचाना एवं सार्वजनिक वितरण के लिए खाद्यान्न की अधिप्राप्ति करना है।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

5. न्यूनतम समर्थन मूल्य क्या है? इनके निर्धारण के तौर-तरीकों पर चर्चा कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. गन्ने के उचित और लाभकारी मूल्य को निम्नलिखित में से किस एक के द्वारा स्वीकृत किया जाता है?
   (a) आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडल समिति
   (b) कृषि लागत एवं मूल्य आयोग
   (c) विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय, कृषि मंत्रालय
   (d) कृषि उत्पादन बाजार समिति

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2015, उत्तर-A)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. कृषि लागत एवं मूल्य आयोग 32 फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य स्वीकृत करता है।
   2. उपभोक्ता मामलों के केन्द्रीय मंत्रालय खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन लॉन्च किया।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2009, उत्तर-D)

3. वह मूल्य, जिन पर सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली को निर्वहित करने एवं बफर-स्टॉक बनाने के लिए खाद्यान्न खरीदती है, कहलाती है:-
   (a) न्यूनतम समर्थन मूल्य
   (b) खरीद मूल्य
   (c) मुद्रा मूल्य
   (d) अंतिम मूल्य

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2001, उत्तर-B)

4. राष्ट्रीय व राजकीय स्तर पर कृषकों को दी जाने वाली विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायताएँ कौन-सी हैं? कृषि आर्थिक सहायता व्यवस्था का उसके द्वारा उत्पन्न विकृतियों के संदर्भ में आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2013)

GS World
Committed To Excellence

# सर्जिकल स्ट्राइक का सच

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-3 (सुरक्षा) से संबंधित है।*

**वर्ष 2016 में पाकिस्तान में भारत द्वारा किए गए 'सर्जिकल स्ट्राइक' को लेकर संशय व्याप्त थे। भारतीय सेना द्वारा हाल ही में इसके वीडियो फुटेज जारी किए गए हैं, जिससे सारे संशयों एवं प्रश्नों का समाधान संभावित रूप से मिल गया है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'दैनिक जागरण' तथा 'राष्ट्रीय सहारा' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## सेना की सर्जिकल स्ट्राइक पर कांग्रेस की शर्मनाक आपत्ति

## (दैनिक जागरण)

करीब दो साल पहले पठानकोट एयरबेस और फिर उड़ी में भारतीय सेना के शिविर पर पाकिस्तान पोषित आतंकियों के हमलों के बाद मोदी सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह इस पड़ोसी देश को सबक सिखाए। आखिरकार 28-29 सितंबर, 2016 की रात भारतीय सेना ने पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर में सर्जिकल स्ट्राइक की। सेना की इस साहसिक कार्रवाई ने जहाँ भारत को गर्व का अहसास कराया, वहीं पाकिस्तान को मुँह छिपाने के लिए मजबूर किया। इस कामयाब सैन्य ऑपरेशन में कई पाकिस्तानी सैनिकों समेत करीब तीन दर्जन आतंकी मारे गए, जबकि भारत को किसी प्रकार का नुकसान नहीं हुआ।

सीमा पार इस तरह की कार्रवाई काफी कठिन और जोखिम भरी मानी जाती है, लेकिन भारतीय सेना के एक दस्ते ने इसे सफलता से कर दिखाया। इस कार्रवाई से पाकिस्तान को यह संदेश गया कि अगर जरूरत पड़ी तो भारतीय सेना लक्ष्मण रेखा पार करने से भी नहीं हिचकेगी। ध्यान रहे पाकिस्तान ने अपने कब्जे वाले कश्मीर में आतंकियों के कई अड्डे बना रखे हैं। इन आतंकी अड्डों का एकमात्र मकसद जम्मू-कश्मीर में अस्थिरता फैलाना है। भारत इन आतंकी अड्डों को लेकर पाकिस्तान को लगातार चेतावनी देता रहा और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उसे बेनकाब भी करता रहा, लेकिन न तो उसने भारत की चिंताओं पर ध्यान दिया और न ही विश्व बिरादरी ने।

एक शांति प्रिय लोकतांत्रिक देश होने के कारण भारत ने किसी पड़ोसी देश के प्रति कभी आक्रामकता नहीं दिखाई। सीमा पार कर सर्जिकल स्ट्राइक उस अति का नतीजा था जो पाकिस्तान आतंक का सहारा लेकर कर रहा था। पहले की तमाम सरकारों ने इसी नीति का अनुसरण किया कि नियंत्रण रेखा पार कर सैन्य कार्रवाई नहीं करनी। इसकी एक वजह यह रही कि वे ऐसी किसी कार्रवाई से युद्ध भड़कने का जोखिम नहीं लेना चाहती थीं, लेकिन प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने आतंकवाद को लेकर पाकिस्तान से यह कहने में कभी परहेज नहीं किया कि अगर उसने दुस्साहस नहीं छोड़ा तो उसे मुँह की खानी पड़ेगी। इसी नीति के तहत सर्जिकल स्ट्राइक हुई और संघर्ष विराम उल्लंघन की हर घटना का कड़ा जवाब दिया जा रहा है।

सभी इससे अवगत हैं कि सर्जिकल स्ट्राइक के समय कांग्रेस समेत कुछ दलों ने किस तरह हायतौबा मचाई थी। राहुल गांधी ने प्रधानमंत्री मोदी के खिलाफ यह बयान तक दे दिया था कि वह सैनिकों के खून की दलाली कर रहे हैं। कुछ विपक्षी नेता तो सर्जिकल स्ट्राइक के सुबूत ही माँगने लग गए थे। इस पर हैरानी है कि पिछले हफ्ते जब विभिन्न टीवी चौनलों ने सर्जिकल स्ट्राइक के वीडियो दिखाए तो कांग्रेस फिर से आपत्ति जताने आगे आ गई।

## वह सर्जिकल ही थी (राष्ट्रीय सहारा)

यह मानने में किसी को हर्ज नहीं होगा कि सर्जिकल स्ट्राइक अगले आम चुनाव का एक बड़ा राजनीतिक मुद्दा बनेगा। वास्तव में कांग्रेस तथा भाजपा के बीच सर्जिकल स्ट्राइक के ठीक 21 महीने बाद आए वीडियो पर जो वाकयुद्ध चल रहा है, उसका अंत संभव नहीं है। सेना के पराक्रम पर राजनीति अपने आपमें बुरी नहीं है। उद्देश्य यदि स्वयं सेना के अंदर उत्साह पैदा करना तथा देशवासियों का मनोबल बनाए रखना हो तो इसका स्वागत किया जाना चाहिए। क्या वर्तमान राजनीति इस श्रेणी में आएगी? कांग्रेस के प्रवक्ता रणदीप सुरेजवाला ने आरोप लगाया है कि भाजपा सेना के पराक्रम का राजनीतिक दुरुपयोग कर रही है। श्रेय सेना को देने की बजाय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को दिया जा रहा है। भाजपा के प्रति हमला यह है कि कांग्रेस हमेशा सेना का मनोबल तोड़ने का काम करती है और उसके पराक्रम पर प्रश्न उठाती है। सच यह है कि संसदीय लोकतंत्र में सैन्य सफलताओं का श्रेय सत्तासीन पार्टियाँ प्रत्यक्ष-परोक्ष दुनिया भर में उठाती हैं। आखिर सैन्य विफलताओं का ठीकरा भी तो उसी के सिर फूटता है। जरा सोचिए, 28-29 सितम्बर, 2016 की आधी रात से सुबह 6.15 बजे तक चले उस अभियान में हमारे कुछ सैनिक सीमा पार शहीद हो गए होते तो क्या होता? विपक्ष और हम पत्रकारों ने किस तरह सरकार को कठघरे में खड़ा किया होता इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है। इस कार्रवाई के अगले दिन सेना के तत्कालीन डीजीएमओ यानी सैन्य ऑपरेशनों के महानिदेशक रणबीर सिंह और विदेश मंत्रालय के तत्कालीन प्रवक्ता विकास स्वरूप ने पत्रकार वार्ता में इसकी जानकारी दी थी। कायदे से चारों ओर उसका स्वागत होना चाहिए था। पर उस समय भी कांग्रेस सहित विरोधी पार्टियों के अनेक नेता यह मानने को तैयार ही नहीं थे कि सीमा पार करके स्ट्राइक किया गया है। सुबूत माँगने वाले भी थे। तब दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल ने कहा था कि पाकिस्तान बस में भरकर विदेशी पत्रकारों को उस जगह पर ले गया और दिखा दिया कि कुछ हुआ ही नहीं है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर इसके सबूत माँगे। ध्यान रखिए, सर्जिकल स्ट्राइक की जानकारी देश को सेना की ओर से दिया गया था। इसलिए आप अविश्वास कर रहे थे तो अपनी सेना पर। केजरीवाल ने पाकिस्तान के खंडन पर तो विश्वास किया, अपनी सेना के बयान पर नहीं। पी. चिदम्बरम ने भी अपने स्तंभ में फर्जिकल स्ट्राइक ही कहा। ऐसे बयानों से संदेह भी पैदा हो रहा था। पाकिस्तान ने इससे इनकार कर दिया था। इसलिए वीडियो जारी करना आवश्यक था। आठ मिनट के वीडियो में देखा जा सकता है कि किस तरह लक्ष्यों को भेदा जा रहा है। कम से कम अब कोई संदेह नहीं रहेगा। दुनिया में भी यह संदेश चला गया कि भारत के पास ऐसा स्ट्राइक करने की क्षमता है जिन पर कुछ प्रमुख देशों को ही विशेषज्ञता प्राप्त थी। वास्तव में वीडियो जारी होने के बाद इस पर खड़े संदेह के बादल छँट कहते हैं। पूरा मनोविज्ञान फिर

कांग्रेस के मीडिया प्रभारी रणदीप सिंह सुरजेवाला ने सर्जिकल स्ट्राइक के वीडियो सामने आने पर कहा कि मोदी सरकार सेना के शौर्य और पराक्रम का इस्तेमाल राजनीतिक रोटियां सेंकने के लिए कर रही है। उन्होंने इसे राजनीतिक फायदे की बेशर्म कोशिश भी करार दिया, लेकिन जब उनसे पूछा गया कि कुछ दल ही तो इसके प्रमाण माँग रहे थे तो वह कोई सीधा जवाब नहीं दे सके।

कुछ और दलों के नेताओं ने भी सर्जिकल स्ट्राइक के वीडियो सामने आने पर शर्मनाक तरीके से आपत्ति जताई और सरकार पर सवाल दागे। सरकार की ओर से इन सवालों का जवाब केंद्रीय मंत्री रविशंकर प्रसाद ने दिया। उन्होंने खून की दलाली वाले बयान का उल्लेख करते हुए कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी से न केवल यह पूछा कि क्या सर्जिकल स्ट्राइक नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह सवाल भी दागा कि क्या सेना का मनोबल तोड़ना ही कांग्रेस का एकमात्र उद्देश्य बचा है?

सेना के पराक्रम पर हर देशवासी गर्व करता है तो इसीलिए कि उसी की वजह से सभी चैन की नींद सोते हैं। हमारी सेना किसी भी तरह के संकट के समय लोगों की सेवा के लिए कोई कोर कसर नहीं छोड़ती। सेना की गौरव गाथाएँ आम लोगों को न केवल गर्व की अनुभूति कराती हैं, बल्कि देशप्रेम का जज्बा भी पैदा करती हैं। न जाने कितने परिवार हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी सेना में शामिल होकर देश की सेवा करने के लिए तैयार रहते हैं। अगर सेना के पराक्रम की गाथाओं से आम जनता परिचित नहीं होगी तो फिर युवा सैनिक बनकर देश की सेवा करने के लिए कैसे प्रेरित होंगे?

राजनीतिक दलों को यह पता होना चाहिए कि सेना में तमाम पद इसलिए रिक्त हैं, क्योंकि अपेक्षित संख्या में योग्य एवं सक्षम युवा सैन्य अफसर बनने के लिए आगे नहीं आ रहे हैं। यह स्थिति यही संकेत करती है कि युवा सेना में जाने के लिए उतने प्रेरित नहीं हो पा रहे हैं जितना उन्हें होना चाहिए। आखिर किसी को भी सर्जिकल स्ट्राइक अथवा सेना के अन्य किसी पराक्रम का विवरण सामने आने पर आपत्ति क्यों होनी चाहिए और वह भी तब जब सेना सर्जिकल स्ट्राइक की अपनी कार्रवाई को सार्वजनिक करने के पक्ष में हो?

आज इसकी आवश्यकता बढ़ गई है कि सेना के साहसिक अभियानों का यथासंभव प्रचार-प्रसार हो। इन अभियानों के वीडियो भी बनने चाहिए और साथ ही डॉक्यूमेंट्री और फीचर फिल्में भी- ठीक वैसे ही जैसे कारगिल संघर्ष पर फिल्म बनी। अपने देश में करीब-करीब हर युद्ध पर फिल्में बनाई गई हैं और इनमें से कुछ तो कालजयी श्रेणी में आती हैं। यदि मोदी सरकार ने सर्जिकल स्ट्राइक के वीडियो सामने आने की इजाजत दी तो इसमें अनुचित क्या है?

कांग्रेस के यह कहने का कोई मतलब नहीं कि सितंबर, 2016 सरीखी सर्जिकल स्ट्राइक मनमोहन सरकार और उसके पहले वाजपेयी सरकार के समय भी की गई थी। निःसंदेह की गई होगी, लेकिन उन्हें सार्वजनिक करने का भी अपना मूल्य-महत्त्व होता है। यह सरकार ही तय करती है कि कब किस सैन्य कार्रवाई को गोपनीय रखना है कब किसे सार्वजनिक करना है? यदि मोदी सरकार ने दो साल पहले पाकिस्तान के खिलाफ की गई सर्जिकल स्ट्राइक के बारे में दुनिया को अवगत कराना जरूरी समझा तो इसके कुछ खास कारण थे और सबसे बड़ा कारण तो पाकिस्तान को यह सख्त संदेश देना था कि अगर वह भारत विरोधी हरकतों से बाज नहीं आता तो भारतीय सेना हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाली नहीं है। आखिर इस फैसले पर आपत्ति जताने का क्या मतलब? सरकारों का तो हर फैसला राजनीतिक ही होता है।

राष्ट्रीयता सदैव भाजपा के एजेंडे में शीर्ष पर रही है और इसी कारण राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत के प्रति उसका विशेष आग्रह रहता है। इसी तरह वह भारत के प्राचीन दर्शन और मूल्यों को प्राथमिकता प्रदान करती है। उसके नेता पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख करते ही रहते हैं। खुद प्रधानमंत्री आम तौर पर अपने संबोधन का समापन भारत माता की जय से करते हैं। कांग्रेस एवं वाम दल इन सबको हिंदूवादी बताते हैं तो भाजपा इसे भारतीयता

रोमाँच का निर्मित हो चुका है। सामान्यतः सर्जिकल स्ट्राइक जहाँ भी हुए उनके वीडियो काफी समय बाद जारी किए गए। तुरंत जारी करना इसलिए भी संभव नहीं था, क्योंकि रात के अंधेरे में ड्रोन और अनमैन्ड एरियल वीइकल (यूएवी) से शूट किए गए तथा ऑपरेशन को मॉनिटर करने वाले सेना के थर्मल इमेजिंग कैमरा में कैप्चर वीडियो को एक साथ मिलाने और आवश्यक अंश छाँटने में समय लगता है। वीडियो में इस बात का ध्यान रखा गया है कि हमारे जवानों के पाक अधिकृत कश्मीर में प्रवेश करने और वापस आने के रास्ते न दिखें। इनसे भविष्य में सुरक्षा को खतरा पहुँच सकता था। अतः यह कहना उचित नहीं कि इससे जवानों की जान को जोखिम में डाल दिया गया है। हम जानते हैं, 18 सितम्बर, 2016 की सुबह बारामुला के उरी सैन्य शिविर पर आतंकवादियों ने अचानक हमला कर दिया और वहाँ ज्वलनशील पदार्थों में लगी आग में 17 जवान शहीद हो गए तथा 3 घायल सैनिक अस्पताल में वीरगति को प्राप्त हुए। हमले के बाद पूरे देश में आक्रोश का माहौल था और बदले की माँग हो रही थी। सर्जिकल स्ट्राइक ठीक इसके दस दिन बाद हो गया। इसका मतलब हुआ कि हमले के तुरंत बाद ही सरकार से हरी झंडी मिल गई थी एवं तैयारी की जा रही थी। वीडियो के साथ बहुत सारे तथ्य भी सामने आ गए हैं। सर्जिकल स्ट्राइक के प्रभारी तत्कालीन नॉर्दर्न कमाँडर लेफ्टिनेंट जनरल (रि.) डी.एस.हुड्डा ने वीडियो जारी होने के बाद कई बातें कही हैं। कहा कि फैसला प्रधानमंत्री के स्तर पर लिया गया था, जिसे सेना ने स्वीकार किया था। हुड्डा के अनुसार ऑपरेशन को उधमपुर स्थित नॉर्दन कमाँड के मुख्यालय के कंट्रोल रूम से मॉनिटर किया जा रहा था। सीमा पार जाने वाली टीम की एक मुख्य चुनौती यह भी थी कि आतंकवदियों के लॉन्चिग पैड पाकिस्तानी सैन्य पोस्ट के करीब थे। यानी हमारे स्पेशल फोर्सेज के जवानों को कार्रवाई इस तरह करनी थी कि दूसरी तरफ से जवाबी कार्रवाई का मौका न मिले। उपग्रहों के माध्यम से सेना को आतंकवादियों के लॉन्च पैड्स की जगहें बिल्कुल सुनिश्चित कर दीं गई। यह भी स्पष्ट है कि 10 दिनों में नरेन्द्र मोदी, तत्कालीन रक्षामंत्री मनोहर पर्रिकर, राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोवमाल और डीजीएमओ रणबीर सिंह ने लगातार बैठकें और ऑपरेशन की मॉनिटिरंग की थी। बेशक, इसके पहले भी सेना ने सीमा पार कर कार्रवाई की है, किंतु इतने विस्तृत क्षेत्र में सर्जिकल स्ट्राइक पहली बार हुआ है। सात अलग-अलग स्थानों पर स्थित आतंकवादियों और सेना की उपस्थिति में लॉन्चिग पैडों को ध्वस्त करना कोई सामान्य बात नहीं है। हालाँकि उसके बाद भी युद्ध विराम का उल्लंघन कम न हुआ न ही आतंकवादी हमले। पर इसके दूसरे पहलू भी हैं। पिछले दो सालों में रिकॉर्ड संख्या में आतंकवादी मारे गए हैं, यह तब हुआ है जब जम्मू-कश्मीर में सैन्य कार्रवाई की विरोधी पीडीपी के साथ भाजपा की सरकार थी। बहरहाल, अब जब वीडियो आ गया है,इस पर नकारात्मक टिप्पणियाँ बंद होनी चाहिए। कांग्रेस और दूसरे विरोधी दल न भूलें कि ऐसे मामले पर मोदी सरकार को घेरने की उनकी रणनीति के उल्टे राजनीतिक परिणाम भी हो सकते हैं। करगिल के दौरान भी कांग्रेस ने वाजपेयी सरकार पर लगातार हमला किया था। उसके बाद हुए चुनाव में राजग विजयी हुआ और कांग्रेस उस समय तक सबसे कम सीटों पर सिमट गई। आप नकारात्मक टिप्पणियां नहीं करेंगे तो भाजपा को आपको सेना विरोधी कहने का अवसर भी नहीं मिलेगा। वैसे भी सरकार पर राजनीतिक हमला करने के लिए रक्षा और विदेश नीति को निशाने पर लाना उचित नहीं है। इससे कई बार सरकार के विरोध की जगह देश का विरोध हो जाता है।

कहती है। भले ही कांग्रेस और वाम दल वंदेमातरम् और भारत माता की जय का उद्घोष करने में संकोच करें, लेकिन भाजपा तो राष्ट्रीयता के इन प्रतीकों का महिमामंडन करने के लिए ही जानी जाती है। यदि कांग्रेस और वामदल यह चाह रहे हैं कि भाजपा का राजनीतिक नजरिया उनके जैसा हो जाए तो यह उनकी बेजा सोच है।

Committed To Excellence

## सारांश

- सामान्यत: सर्जिकल स्ट्राइक जहाँ भी हुए उनके वीडियो काफी समय बाद जारी किए गए। तुरंत जारी करना इसलिए भी संभव नहीं था, क्योंकि रात के अंधेरे में ड्रोन और अनमैन्ड एरियल वीइकल (यूएवी) से शूट किए गए तथा ऑपरेशन को मॉनिटर करने वाले सेना के थर्मल इमेजिंग कैमरा में कैप्चर वीडियो को एक साथ मिलाने और आवश्यक अंश छांटने में समय लगता है।
- 18 सितम्बर, 2016 की सुबह बारामुला के उरी सैन्य शिविर पर आतंकवादियों ने अचानक हमला कर दिया और वहाँ ज्वलनशील पदार्थों में लगी आग में 17 जवान शहीद हो गए तथा 3 घायल सैनिक अस्पताल में वीरगति को प्राप्त हुए। हमले के बाद पूरे देश में आक्रोश का माहौल था और बदले की माँग हो रही थी। सर्जिकल स्ट्राइक ठीक इसके दस दिन बाद हो गया।
- सर्जिकल स्ट्राइक के प्रभारी तत्कालीन नॉर्दर्न कमाँडर लेफ्टिनेंट जनरल (रि.) डी.एस.हुड्डा ने वीडियो जारी होने के बाद कई बातें कही हैं। कहा कि फैसला प्रधानमंत्री के स्तर पर लिया गया था, जिसे सेना ने स्वीकार किया था। हुडा के अनुसार ऑपरेशन को उधमपुर स्थित नॉर्दन कमाँड के मुख्यालय के कंट्रोल रूम से मॉनिटर किया जा रहा था।
- 28-29 सितंबर, 2016 की रात भारतीय सेना ने पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर में सर्जिकल स्ट्राइक की।
- पाकिस्तान ने अपने कब्जे वाले कश्मीर में आतंकियों के कई अड्डे बना रखे हैं। इन आतंकी अड्डों का एकमात्र मकसद जम्मू-कश्मीर में अस्थिरता फैलाना है। भारत इन आतंकी अड्डों को लेकर पाकिस्तान को लगातार चेतावनी देता रहा और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उसे बेनकाब भी करता रहा, लेकिन न तो उसने भारत की चिंताओं पर ध्यान दिया और न ही विश्व बिरादरी ने।

## सर्जिकल स्ट्राइक

- सर्जिकल स्ट्राइक एक ऐसी सैन्य कार्रवाई है जिसमें एक से अधिक सैन्य लक्ष्यों को नुक्सान पहुँचाया जाता है और उसके पश्चात् हमला करने वाली सैनिक इकाई तुरंत वापस लौट आती है। इस तरह की कार्रवाई में प्रयास किया जाता है कि गैर-सैनिक ठिकानों, जैसे- आसपास की इमारतें, बिल्डिंग, वाहन या सार्वजनिक आधारभूत संरचनाओं, को कम से कम नुकसान पहुँचे।
- सर्जिकल स्ट्राइक सटीक सैन्य कार्रवाई का एक रूप है। यदि इस प्रकार के आक्रमण में वायु-बल का इस्तेमाल किया जाता है तो उसमें भी यह कोशिश की जाती है कि सटीक बमबारी की जाए जिसमें आस-पास की सुविधाएँ कम से कम क्षतिग्रस्त हों। 2003 में इराक युद्ध की शुरुआत में बगदाद की बमबारी एक सर्जिकल स्ट्राइक का उपयुक्त उदाहरण है।
- सर्जिकल स्ट्राइक सेना के द्वारा किया जानेवाला एक विशेष प्रकार का हमला होता है। इस हमले में सबसे पहले रणनीति तैयार की जाती है। इसमें समय, स्थान, कमाँडोज की संख्या का विशेष तौर पर ख्याल रखा जाता है। इस अभियान की जानकारी बेहद गोपनीय रखी जाती है जिसकी सूचना सिर्फ चुनिंदा लोगों तक ही होती है। हमले के दौरान ध्यान रखा जाता है कि जिस स्थान को टारगेट किया गया है, वहीं पर हमला हो. साथ ही सिविलियन इलाकों में कोई नुकसान ना हो. इससे पब्लिक प्लेस, आधारभूत संरचना, आवागमन के साधन या आम जनता और उसके उपयोग से साधनों को कोई नुकसान नहीं पहुँचता है।
- सर्जिकल स्ट्राइक में सरप्राइज फैक्टर होता है, यानी लक्ष्य पर अचानक हमला कर दिया जाता है और शत्रु को प्रतिरोध का मौका ही नहीं मिलता। यह सेना द्वारा किया जाने वाला नियंत्रित हमला होता है, जिसमें क्षेत्र विशेष में पहले से तय विशेष ठिकाने पर हमला करके उसे नष्ट कर दिया जाता है। सेना द्वारा उस इलाके में बड़े पैमाने पर होने वाली तबाही को रोका जाता है।
- सर्जिकल स्ट्राइक सिर्फ थल सेना के जरिये ही नहीं बल्कि हवाई हमले के जरिये भी हो सकती है। हवा से की गई सर्जिकल स्ट्राइक को श्प्रिसिशन बॉम्बिंगश के नाम से भी जाना जाता है, जब फाइटर प्लेन के जरिये उन जगहों को ही निशाना बनाया जाता है जिन्हें नष्ट करना है। ये श्कारपेट बॉम्बिंगश से बिल्कुल अलग होता है। कारपेट बॉम्बिंग में बम उस पूरे इलाके में गिराए जाते हैं, जब सही जगह का अनुमान न लगाया जा सके। 2003 के इराक युद्ध के दौरान अमेरिकी वायुसेना द्वारा किए सद्दाम हुसैन के सरकारी ठिकानों पर हमलों को हवाई सर्जिकल स्ट्राइक या प्रिसिशन बॉम्बिंग के रूप में देखा जा सकता है।
- इससे पहले 10 जून, 2015 को म्यांमार में भी भारतीय सेना ने सर्जिकल स्ट्राइक की थी। वहाँ भारतीय सेना के 70 जवानों ने म्यांमार की सीमा में घुसकर 40 मिनट चली कार्रवाई में बड़ी संख्या में नगा विद्रोहियों को मार गिराया था।

# PT / Mains - प्रश्न

## संभावित प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत ने पाकिस्तान में अधिकारिक तौर पर पहली बार 'सर्जिकल स्ट्राइक' 2016 में किए।
   2. इस तरीके के स्ट्राइक भारत ने म्यांमार में भी किया है।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-A)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. सर्जिकल स्ट्राइक को 'प्रिसिशन बॉम्बिंग' के नाम से भी जाना जाता है।
   2. इसमें मुख्य विशेषता 'सरप्राइज फैक्टर' की होती है।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

3. 'सर्जिकल स्ट्राइक' के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. इसमें सिर्फ थल सेना ही नहीं बल्कि हवाई हमले भी शामिल होते हैं।
   2. यह सटीक सैन्य कार्रवाई का एक रूप है।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. सर्जिकल स्ट्राइक को 'कारपेट-बॉम्बिंग भी कहते हैं।'
   2. 2003 में इराक युद्ध के दौरान अमेरिका ने वायुसेना द्वारा 'सर्जिकल स्ट्राइक' पद्धति को अपनाया था।

   उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-B)

5. हाल के वर्षों में भारतीय सेना द्वारा किए गए 'सर्जिकल स्ट्राइकों' से सीमा-पार आतंकवाद का मनोबल टूटा है। टिप्पणी कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1- 'उग्र अनुसरण' एवं 'शल्यक प्रहार' पदों का प्रयोग प्राय: आतंकी हमलों के विरुद्ध सैन्य कार्यवाही के लिए किया जाता है। इस प्रकार की कार्यवाहियों के युद्धनीतिक प्रभाव की विवेचना कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2016)

# उच्च-शिक्षा आयोग का गठन

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।*

**भारत सरकार ने 'हायर एजूकेशन कमीशन ऑफ इंडिया एक्ट-2018' का मसौदा जारी कर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सभी नियामक संस्थाओं को मिलाकर एक नए उच्च शिक्षा आयोग के गठन की मंशा जाहिर की है। इससे भारतीय उच्च शिक्षा की स्थिति में क्या सुधार आते हैं, यह विचारणीय है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'दैनिक जागरण' तथा 'प्रभात खबर' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## नई शिक्षा नीति के प्रारूप को तैयार करने में अनावश्यक देरी, मोदी सरकार संकट में (दैनिक जागरण)

यह अच्छा नहीं हुआ कि जब यह अपेक्षा की जा रही थी कि नई शिक्षा नीति का प्रारूप आने ही वाला है तब यह सूचना मिली कि इस प्रारूप को तैयार करने वाली कस्तूरीरंगन समिति का कार्यकाल एक बार और बढ़ा दिया गया। इस समिति का कार्यकाल तीसरी बार बढ़ाकर 31 अगस्त किया गया है। उम्मीद की जाती है कि अब इस समिति का कार्यकाल और अधिक बढ़ाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। वैसे भी नई शिक्षा नीति को सामने लाने के काम में पहले ही बहुत अधिक देरी हो चुकी है।

यह देरी इसलिए अस्वीकार्य है, क्योंकि मोदी सरकार के कार्यकाल के चार वर्ष पूरे हो चुके हैं। यह स्पष्ट ही है कि इस कार्यकाल में नई शिक्षा नीति के प्रारूप को अमल में लाना मुश्किल ही होगा। अभी तो यह प्रारूप आया ही नहीं है। जब प्रारूप आएगा तब उस पर चर्चा के लिए समय चाहिए होगा। इस चर्चा के बाद सरकार के पास शायद ही इतना समय बचे कि वह उसे क्रियान्वित करने के आवश्यक कदम उठा सके।

यह आश्चर्यजनक है कि नई शिक्षा नीति को लागू करने की बात भाजपा के घोषणापत्र में होने के बावजूद उसे समय पर तैयार नहीं किया जा सका। इसके लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय स्वयं के अलावा अन्य किसी को दोष नही दे सकता। यह एक प्राथमिकता वाला कार्य था और उसे तत्परता के साथ किया जाना चाहिए था। कोई नहीं जानता कि कस्तूरीरंगन समिति के पहले सुब्रह्मण्यम समिति की ओर से तैयार नई शिक्षा नीति के मसौदे को क्यों अस्वीकार कर दिया गया। कम से कम तो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि नई शिक्षा नीति का जो मसौदा सामने आए वह सरकार की अपेक्षाओं और आज की आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

फिलहाल यह कहना कठिन है कि नई शिक्षा नीति के मसौदे में क्या खास बातें होंगी, लेकिन इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा के ढाँचे में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। हर स्तर पर शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं। वर्तमान में जो शिक्षा नीति अमल में लाई जा रही है वह 1986 में तैयार की गई थी। हालाँकि 1992 में उसमें कुछ परिवर्तन किए गए, लेकिन तब भी वह वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती। इस पर आश्चर्य नहीं कि नई शिक्षा नीति को तैयार करने में हो रही देरी पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी नाखुशी प्रकट की है। उसके नाखुश होने के पर्याप्त कारण हैं।

नई शिक्षा नीति को तैयार करने में जो अनावश्यक देरी हुई उसके कारण मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने अब तक जो कुछ किया है, वह अपर्याप्त साबित हो रहा है। यह सही है कि प्रकाश जावड़ेकर के नेतृत्व में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने शिक्षा के क्षेत्र में काफी कुछ

## उच्च शिक्षा में नए प्रयोग से शिक्षाविद् दूरगामी बनाम प्रतिगामी के रूप में विभाजित (दैनिक जागरण)

उच्च शिक्षा में सुधार को लेकर पिछले एक दशक से चल रही बहसों का एक निष्कर्ष यह रहा है कि इसमें एक क्रमबद्ध परिवर्तन की आवश्यकता है। शायद इसी के मद्देनजर भारत सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी को समाप्त कर उसकी जगह 'भारतीय उच्च शिक्षा आयोग' के गठन का फैसला किया है। इससे संबंधित मसौदे को लेकर शिक्षाविद दो फाड़ हो गए हैं। एक तरफ इसे प्रगतिशील, दूरगामी और प्रभावकारी बताया जा रहा है तो दूसरी ओर इसे प्रतिगामी, अदूरदर्शी और राजनीतिक हस्तक्षेप को बढ़ावा देने वाला भी बताया जा रहा है।

अच्छी बात यह है कि सरकार ने मसौदे पर सुझाव और टिप्पणियाँ माँगी हैं ताकि अंतिम विधेयक में उचित सुझावों को शामिल किया जा सके। इस मसौदे की धारा-24 के तहत एक परामर्शदात्री परिषद की स्थापना का प्रावधान है। यह कदम उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सहकारी संघवाद का एक अच्छा उदाहरण होगा। यूजीसी व्यवस्था में यह प्रावधान नहीं था। इस परामर्शदात्री परिषद के अध्यक्ष केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री होंगे। अन्य सदस्यों में नए आयोग के सभी सदस्यों के अतिरिक्त सभी राज्यों के उच्च शिक्षा परिषद के अध्यक्ष भी इसमें शामिल होंगे। यह बिंदु इसलिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि कुछ मामलों में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में केंद्र से कहीं अधिक बड़ी जिम्मेदारी राज्य सरकारों की होती है।

देश में लगभग 70 प्रतिशत विश्वविद्यालय और 90 प्रतिशत कॉलेज राज्य सरकारों के अधीन हैं। जबकि अब तक उच्च शिक्षा संबंधित नीति निर्माण में राज्यों की भूमिका लगभग नगण्य थी। प्रस्तावित परामर्शदात्री परिषद में केंद्र और राज्य सरकारें उच्च शिक्षा से संबंधित समन्वय के बिंदुओं की पहचान करेंगी। बेहतर होगा कि इसे और व्यापक एवं समावेशी बनाते हुए केंद्रीय और राज्य विश्वविद्यालयों के शिक्षक संघों 'फेडक्यूटा' और 'एआइफुक्टो' से एक-एक प्रतिनिधि भी इसमें शामिल किए जाएँ।

नया आयोग 'न्यूनतम दखल और अधिकतम काम', अनुदान कार्यों को अलग करना', 'इंस्पेक्टर राज का अंत', 'अकादमिक गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित करना', 'नियमन और लागू कराने का अधिकार' के सिद्धांतों पर आधारित होगा। इन सिद्धांतों में 'नियमन और लागू कराने का अधिकार' उल्लेखनीय है। यूजीसी इस मामले में सर्वथा दंतहीन था। अगर कोई संस्थान उसके आदेशों का अनुपालन नहीं करता था तो वह अधिक से अधिक उसका अनुदान रोक सकता था।

निजी क्षेत्र के संस्थानों की मनमानी पर तो उसका और भी कोई जोर नहीं था, लेकिन अब नियमों एवं मानकों का जानबूझकर अथवा लगातार उल्लंघन कर रहे स्तरहीन संस्थानों को बंद करने का अधिकार उच्च शिक्षा

बदलाव किए हैं, लेकिन नई शिक्षा नीति के अभाव में वे तमाम कार्य नहीं हो सके जो अब तक हो जाने चाहिए थे। बेहतर यह होगा कि नई शिक्षा नीति को तैयार कर रही समिति को यह संदेश दिया जाए कि वह देर आए दुरुस्त आए, उक्ति को चरितार्थ करने का काम करे। ऐसा होने पर ही देरी के दुष्परिणामों से बचा जा सकेगा।

## उच्च शिक्षा को कैसे सुधारा जाये (प्रभात खबर)

हायर एजुकेशन कमीशन ऑफ इंडिया एक्ट, 2018 के माध्यम से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सभी नियामक यानी रेगुलेटरी संस्थाओं को मिलाकर उनके स्थान पर उच्च शिक्षा आयोग के गठन की तैयारी चल रही है।

आयोग का मुख्य कार्य उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने की होगी, जबकि सभी संस्थानों को वित्तीय मदद की शक्ति मानव संसाधन विकास मंत्रालय के पास होगी। यह कवायद यूपीए सरकार द्वारा गठित यशपाल समिति की रिपोर्ट एवं अनुशंसा के आधार पर आरंभ की गयी थी। परंतु तत्कालीन सरकार के समय आयोग के गठन हेतु बिल संसद में ही लंबित रहा।

यशपाल समिति की रिपोर्ट से जाहिर होता है कि समस्या कहीं और है और निदान कहीं और ढूँढा जा रहा है। लगता है समिति को ही उच्च शिक्षा के अंदर की समस्याओं के वास्तविक अध्ययन का समय नहीं मिला और कुछ एलिट अध्यापकों ने, जो समिति के सदस्य थे, अपनी समझ से समस्याओं को गढ़ लिया और आयोग गठन करने की अनुशंसा कर दी।

वर्तमान सरकार भी पिछली सरकार की गलतियों को आगे बढ़ा रही है। आयोग के गठन से उच्च शिक्षा में गुणवत्ता नहीं आयेगी और यह कदम उच्च शिक्षा के लिए आत्मघाती होगा।

यह समझने की जरूरत है कि नये आयोग में जिन कर्मचारियों की नियुक्ति होगी, क्या वे मंगल ग्रह से आयेंगे? या वही पुराने लोग होंगे, जो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त बुराइयों के लिए जिम्मेदार हैं? ऐसे में संस्थाओं को बदल देने से गुणवत्ता बढ़ जायेगी, ऐसी सोच आपराधिक है।

सरकार दिखावा कर रही है कि वह कुछ नया कर रही है। अगर संस्थाओं को चलानेवाले लोग सही मायने में शिक्षित और ईमानदार होंगे, तो गुणवत्ता अपने आप आ जायेगी; अन्यथा कानूनी डंडे से या फिर नयी संस्थाओं के गठन से गुणवत्ता कभी नहीं आयेगी।

कई गैर-सरकारी संस्थानों ने अपने अध्ययन में ऐसा बताया है कि व्यवस्था के अंदर सिर्फ 20 प्रतिशत लोग ही कार्यकुशल होते हैं और व्यवस्था इन्हीं लोगो से आगे बढ़ती रहती है। बाकी 80 प्रतिशत लोग पैरवी-पुत्र होते हैं, जो सिर्फ नौकरी करते हैं काम नहीं. यह एक बहुत अनुदार आकलन हो सकता है।

यह कटु सत्य है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में सड़ांध फैली हुई है। वहाँ ऐसे प्रोफेसर-शिक्षक बने बैठे हैं, जिन्हें कायदे से प्राइमरी स्कूल में भी नियुक्ति देना अपराध होगा। इनमें बहुत से ऐसे भी होते हैं, जिन्हें राजनीतिक दलों का संरक्षण प्राप्त होता है। ऐसे में आयोग के माध्यम से गुणवत्ता की बात करना बेमानी है।

एक और समस्या है। जो शिक्षक और कर्मचारी ईमानदारी से काम करते हैं, उन्हें हतोत्साहित कर दिया जाता है और उन्हें कई प्रकार के भेदभाव का शिकार होना पड़ता है।

उन्हें बेबकूफ करार दे दिया जाता है और उनकी प्रोन्नति भी ठंडे बस्ते में डाल दी जाती है। जो वास्तव में शिक्षक हैं, वे व्यवस्था से उलझना पसंद नहीं करते. शिक्षा जगत की राजनीति, शक्ति-संघर्ष और अन्य ऐसे कार्यों से दूर रहने का प्रयास करते हैं, जिसमें उन्हें उत्पीड़न का शिकार होना पड़ सकता है।

आयोग के पास होगा। अनुपालन नहीं करने की स्थिति में जुर्माना और जेल का भी प्रावधान है। इसी तरह से 'इंस्पेक्टर राज' के अंत की भी घोषणा कर दी गई है।

नया आयोग संस्थानों को शुरू और बंद करने के लिए मानक और नियम तय करेगा और इस आधार पर उन्हें चलाने अथवा बंद करने का आदेश दे सकेगा। नई व्यवस्था में सारी प्रक्रिया ऑनलाइन होगी और सूचनाएँ संस्थानों की वेबसाइट पर उपलब्ध होंगी ताकि सभी को संस्थान संबंधित पूरी जानकारी हो सके और जरूरत पड़ने पर शिकायत भी की जा सके। यह समूची प्रक्रिया 'न्यूनतम दखल और अधिकतम काम' के सिद्धांत पर ही आधारित है।

मसौदे की धारा-15(4)(एल) के तहत नया आयोग शिक्षण संस्थानों द्वारा वसूले जाने वाले शुल्क को निर्धारित करने के लिए मानक और प्रक्रिया भी बनाएगा। इस प्रावधान के महत्त्व को ऐसे समझा जाए कि इससे निजी संस्थानों द्वारा अनाप-शनाप फीस निर्धारित करने और वसूलने पर एक बड़ी हद तक नियंत्रण लग सकेगा। साथ ही आयोग केंद्र और राज्य सरकारों को शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए जरूरी कदमों की जानकारी भी देगा।

नए प्रावधानों में सबसे ज्यादा विवादास्पद 'अनुदान कार्यों' से आयोग को अलग करना है।

सैद्धांतिक रूप से तो यह सही है कि एक ही निकाय में दो शक्तियाँ नहीं होनी चाहिए, लेकिन समस्या यह है कि अनुदान का यह कार्य मंत्रालय के अधीन किया जाना है। यह अनेक जटिलताओं को जन्म देगा, क्योंकि अनुदान प्रणाली को राजनीतिक हस्तक्षेप के साथ-साथ नौकरशाही की लालफीताशाही की दोहरी मार सहनी पड़ेगी। पहले भी अनुदान कार्य राजनीतिक हस्तक्षेप और लालफीताशाही से अछूते नहीं रहे हैं, लेकिन स्वायत्त यूजीसी के हाथ में होने से अनुदान संबंधी कामकाज अपेक्षाकृत ठीक-ठाक चलते रहे हैं।

दरअसल उच्च शिक्षा में प्रोजेक्ट, रिसर्च से लेकर आधारभूत संरचना में धन का आवंटन नौकरशाही के चश्मे से नहीं किया जा सकता। खास तौर से तब और भी नहीं जब भारतीय नौकरशाही का पुराना रिकॉर्ड बहुत उत्साहवर्धक न रहा हो । अनुदान कार्यों के लिए चाहे एक अलग स्वायत्त निकाय हो अथवा यह नए आयोग के पास ही रहे, यह बहुत जरूरी है कि मंत्रालय से यह स्वतंत्र ही हो। यह भी जरूरी है कि अनुदान की प्रक्रिया पूर्णतया पारदर्शी होनी चाहिए।

प्रस्तावित उच्च शिक्षा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों को लेकर भी कुछ समस्याएँ हैं। मसौदे की धारा 3(6)(ए) के अनुसार एक प्रतिष्ठित शिक्षाविद एवं शैक्षिक प्रशासक जिसमें उच्च शिक्षा संस्थानों के निर्माण और शासन की सिद्ध क्षमता हो, वह भी अध्यक्ष बन सकता है। यह अपने आप में अत्यंत खतरनाक प्रावधान है।

इस व्यवस्था से तो कोई शक्तिशाली राजनेता या व्यवसायी और उद्योगपति, जिनके अपने कॉलेज/ विश्वविद्यालय हों अथवा शिक्षा विभाग से जुड़ा हुआ कोई प्रभावशाली नौकरशाह भी अध्यक्ष की कुर्सी पर काबिज हो सकता है। उच्च शिक्षा की इससे जो दुर्दशा होगी उसका अंदाजा ही लगाया जा सकता है।

यह प्रावधान स्पष्ट होना चाहिए कि अध्यक्ष सिर्फ और सिर्फ विश्वविद्यालय का प्रोफेसर ही होगा, क्योंकि उच्च शिक्षा की जटिलता एवं उसे समग्रता में केवल एक प्रोफेसर ही समझ सकता है। यह भी चिंताजनक है कि आयोग के 12 सदस्यों में केवल दो प्रोफेसर होंगे जबकि यूजीसी अधिनियम में 10 सदस्यों में न्यूनतम चार प्रोफेसरों का प्रावधान था। यह जरूरी है कि नए बनने वाले आयोग में कम से कम पाँच प्रोफेसर हों और न्यूनतम चार सरकारी विश्वविद्यालयों से हों।

ये मात्र कुछेक प्रतिनिधि समस्याएँ हैं। समस्या के मूल में है गलत लोगों का उच्च शिक्षा में प्रवेश और उनका बोलबाला। अत: समाधान के तमाम प्रयास इस पर केंद्रित होने चाहिए। अगर संस्थानों में उचित शिक्षा एवं शोध में रुचि रखनेवाले लोगों की नियुक्ति हो, तो शिक्षा का विकास स्वत: उचित मार्ग पर चल पड़ेगा। सिर्फ करोड़ों और अरबों की बिल्डिंग या ढेर सारे शिक्षक की नियुक्ति कर लेने से कुछ नहीं सुधरने वाला।

आयोग का गठन भी सरकार की निराधार और गलत दिशा में किया गया प्रयास साबित होगा। अगर शिक्षक सही हों, तो पेड़ के नीचे भी शिक्षा की लौ प्रज्ज्वलित हो सकती है। वरना उच्च शिक्षा में गुणवत्ता लाने हेतु मंत्रालय और रेगुलेटरी संस्थाएँ विश्वविद्यालयों और कॉलेजों से रिपोर्ट मंगवाती रहती हैं और शिक्षण गुणवत्ता के इस पेपर-वर्क की बलिवेदी पर शिक्षा शहीद होती रहती है।

महान दार्शनिक प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक में आदर्श राज्य की परिकल्पना करते हुए कहा है कि राज्य सर्वप्रथम एक शिक्षण संस्थान है। अगर राज्य अपने नागरिकों को उचित और रोजगार-परक शिक्षा देने में असमर्थ है, तो उस राज्य का विनाश निश्चित है। राज्य का मुख्य कार्य नागरिक-निर्माण है और वह केवल उचित व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से ही संभव है।

एक राज्य के नागरिक अगर चरित्रवान एवं कार्यशील हों, तो वहाँ अच्छे से अच्छे कानून भी अप्रासंगिक हो जायेंगे. इसके उलट अगर राज्य के नागरिक और शिक्षा-व्यवस्था ही भ्रष्ट हो, तो सख्त से सख्त कानून भी उस राज्य को श्रेष्ठ नहीं बना सकता. एक शिक्षक की गलती राष्ट्र के चरित्र में झलकती है। भारतवर्ष इसका अपवाद नहीं है।

अत: वर्तमान सरकार को चाहिए की शिक्षा-व्यवस्था के अंदर के सड़ांध को दूर करे. ऐसे लोगों को उच्च पदों पर आसीन करे, जो इसके पीछे भागते नहीं हो, लॉबिंग नहीं करते हों और पद को खरीदने का जुगाड़ नहीं लगाते हों।

अगर उच्च पदों पर सिर्फ ऐसे लोगों को काबिज कर दिया जाये जो सही मायने में शिक्षा की कदर करते हों; बुद्धिजीवी हों और साथ में उनकी प्रशासनिक क्षमता भी हो; जो जातिवाद, धर्मवाद, लिंग-भेद, क्षेत्रवाद, या भाई-भतीजावाद से ऊपर उठकर शिक्षा के हित में कार्य करते हों, तो यकीन मानिए कि भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली विश्व की श्रेष्ठतम शिक्षा प्रणाली हो जायेगी।

बेहतर होगा कि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष बनाने के लिए सर्च कमेटी जो पैनल तैयार करे उसका चयन अकेले सरकार न करे। इससे विवाद की गुंजाइश कम होगी और भी अच्छा होगा कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली एक उच्च प्राधिकार समिति ही इसका चयन करे। समिति के अन्य सदस्यों में लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष, सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश और एचआरडी मंत्री शामिल हो सकते हैं।

## GS World टीम...

### सारांश

- हायर एजुकेशन कमीशन ऑफ इंडिया एक्ट 2018 के माध्यम से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सभी नियामक यानी रेगुलेटरी संस्थाओं को मिलाकर उनके स्थान पर उच्च शिक्षा आयोग के गठन की तैयारी चल रही है। भारत सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी को समाप्त कर उसकी जगह 'भारतीय उच्च शिक्षा आयोग' के गठन का फैसला किया है।
- आयोग का मुख्य कार्य उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने की होगी, जबकि सभी संस्थानों को वित्तीय मदद की शक्ति मानव संसाधन विकास मंत्रालय के पास होगी. यह कवायद यूपीए सरकार द्वारा गठित यशपाल समिति की रिपोर्ट एवं अनुशंसा के आधार पर आरंभ की गयी थी।
- महान दार्शनिक प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक में आदर्श राज्य की परिकल्पना करते हुए कहा है कि राज्य सर्वप्रथम एक शिक्षण संस्थान है। अगर राज्य अपने नागरिकों को उचित और रोजगार-परक शिक्षा देने में असमर्थ है, तो उस राज्य का विनाश निश्चित है। राज्य का मुख्य कार्य नागरिक-निर्माण है और वह केवल उचित व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से ही संभव है।
- सरकार ने मसौदे पर सुझाव और टिप्पणियाँ माँगी हैं ताकि अंतिम विधेयक में उचित सुझावों को शामिल किया जा सके। इस मसौदे की धारा-24 के तहत एक परामर्शदात्री परिषद की स्थापना का प्रावधान है। यह कदम उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सहकारी संघवाद का एक अच्छा उदाहरण होगा। यूजीसी व्यवस्था में यह प्रावधान नहीं था। इस परामर्शदात्री परिषद के अध्यक्ष केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री होंगे। अन्य सदस्यों में नए आयोग के सभी सदस्यों के अतिरिक्त सभी राज्यों के उच्च शिक्षा परिषद के अध्यक्ष भी इसमें शामिल होंगे।
- देश में लगभग 70 प्रतिशत विश्वविद्यालय और 90 प्रतिशत कॉलेज राज्य सरकारों के अधीन हैं। जबकि अब तक उच्च शिक्षा संबंधित नीति निर्माण में राज्यों की भूमिका लगभग नगण्य थी। प्रस्तावित परामर्शदात्री परिषद में केंद्र और राज्य सरकारें उच्च शिक्षा से संबंधित समन्वय के बिंदुओं की पहचान करेंगी।
- नया आयोग 'न्यूनतम दखल और अधिकतम काम','अनुदान कार्यों को अलग करना', 'इंस्पेक्टर राज का अंत', 'अकादमिक गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित करना', 'नियमन और लागू कराने का अधिकार' के सिद्धांतों पर आधारित होगा। इन सिद्धांतों में 'नियमन और लागू कराने का अधिकार' उल्लेखनीय है।
- यूजीसी इस मामले में सर्वथा दंतहीन था। अगर कोई संस्थान उसके आदेशों का अनुपालन नहीं करता था तो वह अधिक से अधिक उसका अनुदान रोक सकता था। निजी क्षेत्र के संस्थानों की मनमानी पर तो उसका और भी कोई जोर नहीं था, लेकिन अब नियमों एवं मानकों का जानबूझकर अथवा लगातार उल्लंघन कर रहे स्तरहीन संस्थानों को बंद करने का अधिकार उच्च शिक्षा आयोग के पास होगा। अनुपालन नहीं करने की स्थिति में जुर्माना और जेल का भी प्रावधान है।
- नया आयोग संस्थानों को शुरू और बंद करने के लिए मानक और नियम तय करेगा और इस आधार पर उन्हें चलाने अथवा बंद करने का आदेश दे सकेगा। नई व्यवस्था में सारी प्रक्रिया ऑनलाइन होगी और सूचनाएं संस्थानों की वेबसाइट पर उपलब्ध होंगी ताकि सभी को संस्थान संबंधित पूरी जानकारी हो सके और जरूरत पड़ने पर शिकायत भी की जा सके। यह समूची प्रक्रिया 'न्यूनतम दखल और अधिकतम काम' के सिद्धांत पर ही आधारित है।
- मसौदे की धारा-15(4)(एल) के तहत नया आयोग शिक्षण संस्थानों द्वारा वसूले जाने वाले शुल्क को निर्धारित करने के लिए मानक और प्रक्रिया भी बनाएगा।
- नए प्रावधानों में सबसे ज्यादा विवादास्पद 'अनुदान कार्यों' से आयोग को अलग करना है।

- सैद्धांतिक रूप से तो यह सही है कि एक ही निकाय में दो शक्तियाँ नहीं होनी चाहिए, अनुदान का यह कार्य मंत्रालय के अधीन किया जाना है। यह अनेक जटिलताओं को जन्म देगा, क्योंकि अनुदान प्रणाली को राजनीतिक हस्तक्षेप के साथ-साथ नौकरशाही की लालफीताशाही की दोहरी मार सहनी पड़ेगी।
- यह अपेक्षा की जा रही थी कि नई शिक्षा नीति का प्रारूप आने ही वाला है, तब यह सूचना मिली कि इस प्रारूप को तैयार करने वाली कस्तूरीरंगन समिति का कार्यकाल एक बार और बढ़ा दिया गया। इस समिति का कार्यकाल तीसरी बार बढ़ाकर 31 अगस्त किया गया है।
- वर्तमान में जो शिक्षा नीति अमल में लाई जा रही है, वह 1986 में तैयार की गई थी। हालाँकि 1992 में उसमें कुछ परिवर्तन किए गए, लेकिन तब भी वह वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती।

## उच्च शिक्षा

- उच्च शिक्षा का अर्थ है सामान्य रूप से सबको दी जानेवाली शिक्षा से ऊपर किसी विशेष विषय या विषयों में विशेष, विशद तथा सुक्ष्म शिक्षा। यह शिक्षा के उस स्तर का नाम है जो विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक विश्वविद्यालयों, कम्युनिटी महाविद्यालयों, लिबरल आर्ट कालेजों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि के द्वारा दी जाती है।
- प्राथमिक एवं माध्यमिक के बाद यह शिक्षा का तृतीय स्तर है जो प्राय: ऐच्छिक (non & compulsory) होता है। इसके अन्तर्गत स्नातक, परास्नातक (postgraduate education) एवं व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि आते हैं।
- भारत में उच्च शिक्षा का इतिहास काफी पुराना है। इसके मूल में 19वीं शताब्दी है, जब वाइसरॉय लॉर्ड मैकाले ने अपनी सिफारिशें रखी थीं।
- उसके बाद बीसवीं शताब्दी में सन् 1925 में इंटर यूनिवर्सिटी बोर्ड की स्थापना की गई थी जिसका बाद में नाम भारतीय विश्वविद्यालय संघ (एसोसिएशन ऑफ इंडियन यूनिवर्सिटीज) पड़ा। इस संस्था के अंतर्गत सभी विश्वविद्यालयों के बीच शैक्षिक, सांस्कृतिक और संबंधित क्षेत्रों के बारे में सूचना का आदान-प्रदान किया जाने लगा था।
- भारत का उच्च शिक्षा तंत्र अमेरिका, चीन के बाद विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उच्च शिक्षा तंत्र है। विगत 50 वर्षों में देश के विश्वविद्यालयों की संख्या में 11.6 गुना, महाविद्यालयों में 12.5 गुना, विद्यार्थियों की संख्या में 60 गुना और शिक्षकों की संख्या में 25 गुना वृद्धि हुई है।
- स्कूल की पढ़ाई करने वाले नौ छात्रों में से एक ही कॉलेज पहुँच पाता है। भारत में उच्च शिक्षा के लिए रजिस्ट्रेशन कराने वाले छात्रों का अनुपात दुनिया में सबसे कम यानी सिर्फ 11 फीसदी है। अमेरिका में ये अनुपात 83 फीसदी है।
- दुनिया भर में विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में हुए शोध में से एक तिहाई अमेरिका में होते हैं। इसके ठीक विपरीत भारत से सिर्फ 3 फीसदी शोध पत्र ही प्रकाशित हो पाते हैं।
- 1952 में लक्ष्मीस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा 1964 में दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर 1968 में शिक्षा नीति पर एक प्रस्ताव प्रकाशित किया गया, जिसमें 'राष्ट्रीय विकास के प्रति वचनबद्ध, चरित्रवान तथा कार्यकुशल' युवक-युवतियों को तैयार करने का लक्ष्य रखा गया।
- मई 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई, जो अब तक चल रही है। इस बीच राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा के लिए 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति तथा 1993 में प्रो. यशपाल समिति का गठन किया गया।

## विश्वषविद्यालय अनुदान आयोग

- भारत का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग केन्द्रीय सरकार का एक उपक्रम है जो सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों को अनुदान प्रदान करता है। यही आयोग विश्वविद्यालयों को मान्यता भी देता है।
- भारतीय स्वतंत्रता के उपरांत 1948 में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन की नींव रखी गई। इसके अंतर्गत देश में शिक्षा की आवश्यकताओं और उनमें सुधार पर काम किए जाने पर विचार किया जाता था। इस आयोग ने सलाह दी कि आजादी पूर्व के यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमिटी को फिर से गठित किया जाए। उसका एक अध्यक्ष हो और उसके साथ ही देश के बड़े शिक्षाविदों को भी इस समिति के साथ जोड़ा जाए।
- सन् 1952 में सरकार ने निर्णय लिया कि केंद्रीय और अन्य उच्च शिक्षा संस्थानों को दी जाने वाले वित्तीय सहयोग के मामलों को यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन के अधीन लाया जाएगा। इस तरह 28 दिसंबर, 1953 को तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने औपचारिक तौर पर यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन की नींव रखी थी। इसके बाद हालाँकि 1956 में जाकर ही यूजीसी को संसद में पारित एक विशेष विधेयक के बाद सरकार के अधीन लाया गया और औपचारिक तौर पर इसे स्थापित माना गया।

## हायर एजुकेशन कमीशन

- हायर एजुकेशन कमीशन एकल नियामक संस्था होगी जो केंद्रीय, निजी तथा डीम्ड विश्वविद्यालयों के लिये सभी प्रकार के नियम तय करेगी। अब तक यह काम मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा किये जाते थे। मंत्रालय केवल वित्तीय कामकाज संभालेगा, जिसके तहत विश्वविद्यालयों व उच्च शिक्षण संस्थानों को अनुदान देना, स्कॉलरशिप राशि आदि का भुगतान करना भी शामिल रहेगा।
- मसौदा बिल के मुताबिक नयी नियामक संस्थान को शैक्षणिक गुणवत्ता तय करने का अधिकार होगा। यह फर्जी व खराब गुणवत्ता वाले संस्थानों को बंद करने का आदेश भी दे सकती है। आदेश नहीं मानने वाले के खिलाफ जुर्माना और सजा दोनों का प्रावधान है
- आयोग एक राष्ट्रीय डेटा बेस के माध्यम से आयोग ज्ञान के नये उभरते क्षेत्रों में हो रहे विकास और सभी क्षेत्रों में उच्च शिक्षा संस्थानों के संतुलित विकास विशेषकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा की गुणवत्ता को प्रोत्साहित करने से संबंधित सभी मामलों की निगरानी करेगा।
- उच्च शिक्षण संस्थानों की मनमानी को रोकने के लिये पहली बार HECI एक्ट 2018 में जुर्माने के साथ सजा का प्रावधान किया गया है। दोषी पाए जाने पर सीपीसी के तहत तीन साल या उससे अधिक की सजा हो सकती है।
- हायर एजुकेशन कमीशन ऑफ इंडिया में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और 12 अन्य सदस्य होंगे, जिनमें कार्यकारी सदस्य, प्रतिष्ठित शिक्षाविद और उद्योग जगत का एक वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित सदस्य शामिल होगा। अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त ऐसे व्यक्ति होंगे जिनमें नेतृत्व क्षमता, संस्थानों का विकास करने की प्रमाणित योग्यता और उच्च शिक्षा से संबंधित नीतियों एवं कार्यों की गहरी समझ होगी। आयोग का एक सचिव भी होगा, जो सदस्य सचिव के रूप में काम करेगा। इन सभी की नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा की जाएगी।

# PT / Mains - प्रश्न

## संभावित प्रश्न

1. 'हायर एजुकेशन कमीशन ऑफ इंडिया एक्ट-2018' के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. यह उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सभी नियामक संस्थाओं को मिलाकर उनके स्थान पर उच्च शिक्षा आयोग का गठन करेगा।
   2. सभी शिक्षण-संस्थाओं को वित्तीय मदद की शक्ति मानव संसाधन विकास मंत्रालय के पास होगी।

   उपर्युक्त में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. वर्तमान में लागू शिक्षा नीति वर्ष 1986 में लागू की गई थी।
   2. भारत का उच्च शिक्षा तंत्र अमेरिका, चीन के बाद तीसरा सबसे बड़ा उच्च शिक्षा-तंत्र है।

   उपर्युक्त में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

3. निम्नलिखित में से कौन-सा आयोग भारत में शिक्षा से संबंधित नहीं है?
   (a) मुदालियर आयोग, 1952
   (b) दौलत सिंह कोठारी आयोग, 1964
   (c) यशपाल आयोग, 1993
   (d) धर्मवीर सिंह आयोग, 1998 (उत्तर-D)

4. ''भारत में उच्च-शिक्षा की दशा एवं दिशा में नितांत आवश्यक परिवर्तन वांछनीय है।'' चर्चा कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. निम्नलिखित में से संविधान के किन प्रावधानों का असर शिक्षा पर होता है?
   1. राज्य के नीति-निदेशक तत्त्व
   2. ग्रामीण एवं शहरी स्थानीय निकाय
   3. पाँचवीं अनुसूची
   4. छठी अनुसूची
   5. सातवीं अनुसूची

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) केवल 1 और 2 (b) केवल 3, 4 और 5
   (c) केवल 1, 2 और 5 (d) 1, 2, 3, 4 और 5

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2012, उत्तर-C)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. शिक्षा का अधिकार
   2. सार्वजनिक सेवाओं में बराबर पहुँच का अधिकार
   3. भोजन का अधिकार

   उपर्युक्त में कौन-सा/से 'मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा' के तहत् मानव-अधिकार है?
   (a) केवल 1 (b) केवल 1 और 2
   (c) केवल 3 (d) 1, 2 और 3

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2011, उत्तर-D)

3. संविधान का कौन-सा अनुच्छेद यह व्यवस्था करता है कि यह प्रत्येक राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर निर्देशों की पर्याप्त सुविधा मातृभाषा में उपलब्ध करायें?
   (a) अनुच्छेद-349 (b) अनुच्छेद-350
   (c) अनुच्छेद-350 (A) (d) अनुच्छेद-351

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2001, उत्तर-C)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. 6-14 वर्ष के बच्चों की आयु-सीमा के लिए मुफ्त एवं बाध्यकारी शिक्षा को संविधान के 76वें संशोधन द्वारा मौलिक-अधिकार बनाया गया।
   2. सर्वशिक्षा अभियान, कम्प्यूटर-शिक्षा को ग्रामीण-क्षेत्रों में प्रदान करता है।
   3. शिक्षा को भारतीय संविधान के 42वें संशोधन, 1976 द्वारा समवर्ती सूची में शामिल किया गया।

   उपर्युक्त कथनों में कौन से कथन सत्य हैं?
   (a) 1, 2 और 3 (b) केवल 1 और 2
   (c) केवल 2 और 3 (d) केवल 1 और 3

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2006, उत्तर-C)

5. 1854 के 'वुड्स डिस्पैच' के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य था-
   (a) देशी भारतीयों के लिए रोजगार अवसरों का सृजन
   (b) भारत में पश्चिमी संस्कृति का प्रसार
   (c) अंग्रेजी भाषा माध्यम का प्रयोग कर लोगों में साक्षरता को बढ़ाना
   (d) पारंपरिक भारतीय शिक्षा में वैज्ञानिक शोध एवं तर्कवाद का परिचय

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2003, उत्तर-C)

6. भारत में उच्च शिक्षा की गुणता को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बनाने के लिए उसमें भारी सुधारों की आवश्यकता है। क्या आपके विचार में विदेशी शैक्षिक संस्थाओं का प्रवेश देश में उच्च और तकनीकी शिक्षा की गुणता की प्रोन्नति में सहायक होगा? (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2015)

6. ''वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह सुनिश्चत करना आवश्यक है कि विनियामक संस्थाएँ स्वतंत्र और स्वायत्त बनी रहें।'' पिछले कुछ समय में हुए अनुभवों के प्रकाश में चर्चा कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2015)

# जेल और मानवाधिकार

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।*

**हाल ही में भारतीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा सुधार-गृहों की स्थिति पर दायर जनहित-याचिका में ग्यारह-सूत्रीय निर्देश दिए गए हैं। इसमें स्वतंत्रता के अधिकार, मानवीय व्यवहार एवं अप्राकृतिक मृत्यु जैसे विषयों पर निर्देश है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्र 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित लेख का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## कैदियों को बेहतर इंसान बनाने के लिए जरूरी है जेलों को सुधार गृह बनाया जाए (दैनिक जागरण)

जेलों में कैद बंदियों के लिए न्यूनतम मानक निर्धारित करने वाले संयुक्त राष्ट्र नियम, 2017 और भारत में मॉडल प्रिजन मैनुअल, 2017, कैदी महिलाओं की स्थिति पर संसदीय समिति की रिपोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में 1382 जेलों में अमानवीय स्थिति पर सुनवाई से जुड़े मुद्दों से यह मसला चर्चा के केंद्र में आया है। इससे तमाम सवाल उठे हैं जिनमें जेलों को सुधार गृह में तब्दील करने का भी एक प्रमुख मसला है। इसे मूर्त रूप देने के लिए तमाम बड़े बदलाव करने होंगे जिनमें खुली जेलों का होना सबसे अहम है।

खुली जेलें तीन तरह की होती हैं। सेमी ओपन जेल, ओपन जेल और ओपन कालोनी। सेमी ओपन जेल में कैदी जेल के ही एक हिस्से में रहते हुए कुछ बंदिशों से मुक्त हो जाता है। ओपन जेल में वह जेल के बाहरी परिसर में रहते हुए जेल के खुले परिवेश में अपनी आजीविका कमा सकता है। इसमें परिवार से मुलाकात का भी प्रावधान होता है। वह रोज जेल से एक नियत समय के लिए बाहर जाकर वापस लौट सकता है। वहीं खुली कालोनी में बंदी कहीं भी बाहर जाकर किसी भी तरह के काम को करने के लिए आजाद रहता है। यानी खुली जेल ऐसी जेल होती है जिसमें जेल के सुरक्षा नियमों को काफी लचीला रखा जाता है। ऐसी जेलें बड़ी जेलों का ही एक बाहरी हिस्सा होती है जो सलाखों से काफी हद तक आजाद होती है। वहाँ कैदियों को आत्मअनुशासन एवं स्वरोजगार पर जोर दिया जाता है।

बाहरी लोगों के मुलाकात से बंदी भी धीरे-धीरे स्वयं को समाज में लौटने के लिए तैयारी होने का अवसर पा लेता है। ऐसे में खुली जेलों का मकसद जेलों में बढ़ती भीड़ पर काबू पाना और कैदियों को बेहतर इंसान बनाकर समाज में वापस लौटकर सामान्य जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करना है।

ब्रिटेन में 70 के दशक में ही ओपन जेल शुरू कर दी गई थी। कुल 10 प्रतिशत बंदियों को इनमें भेजे जाने का प्रावधान था। भारत में भी राजस्थान और महाराष्ट्र में इस परिपाटी को अपनाया जा रहा है, लेकिन बाकी राज्य इसमें अभी पीछे हैं। इन्हीं खुली जेलों को लेकर लेकर सितंबर 2017 में सुप्रीम कोर्ट ने एक आदेश दिया कि पूरे देश में इसे लागू किया जाए। फिर मार्च 2018 में एक और आदेश के जरिये न्यायमूर्ति एमबी लोकूर और न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता की खंडपीठ ने तमाम राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के पुलिस महानिदेशकों (जेल) को चेतावनी दी कि जेलों में क्षमता से अधिक कैदियों के मुद्दे से निपटने में कार्ययोजना जमा करने में नाकाम रहने की वजह से उनके खिलाफ अदालत की अवमानना का मामला चलाया जा सकता है।

खुली जेलों पर जोर देने का यह फैसला संजय दत्त द्वारा दायर की गई जनहित याचिका के आधार पर लिया गया है। अदालत ने 11 और निर्देश दिए हैं। हालाँकि यह बात अलग है कि दत्त के जीवन पर बनी फिल्म संजू के प्रोमो में जेल की हकीकत से उलट दृश्य दिखाया गया है।

इस समय भारत में कुल 63 खुली जेलें हैं। इनमें से केवल चार ही महिलाओं के लिए हैं। यरवदा, तिरुअनंतपुरम और राजस्थान में दुर्गापुर एवं सांगानेर में महिलाओं के लिए खुली जेल का प्रावधान है। 2010 में यरवदा में देश की पहली महिला खुली जेल को शुरू कर दिया गया। बाकी 59 खुली जेलों में महिला कैदियों को रखने की सुविधा नहीं। कई राज्य इसे लेकर हिचक दिखा रहे हैं। व्यापक परिदृश्य में देखें तो पूरे देश में इस समय 1382 जेलें हैं जिनमें से महिलाओं के लिए सिर्फ 18 ही हैं। यानी चाहे महिला जेल हो या खुली जेल, वे जिन जेलों में हैं वहाँ पहले ही क्षमताओं से अधिक कैदियों की चुनौती और ज्यादा बढ़ गई है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की 2015 की रिपोर्ट के मुताबिक भारतीय जेलों में क्षमता के मुकाबले 114.4 फीसदी ज्यादा कैदी बंद हैं और कुछ मामलों में तो यह तादाद छह सौ फीसदी तक है। इस वजह से भी खुली जेलों को बनाए जाने की हिमायत होती रही है। दुनिया में पहली खुली जेल स्विट्जरलैंड में 1891 में बनी थी। फिर अमेरिका में 1916 में और ब्रिटेन में 1930 में बनाई गई। भारत में पहली खुली जेल 1905 में मुंबई में बनी और इसमें थाणे केंद्रीय जेल, बंबई के खास बंदियों को रखा गया, लेकिन इस खुली जेल को 1910 में बंद करना पड़ा।

उत्तर प्रदेश में अनधिकृत तौर पर खुली जेल का पहला कैंप 1953 में बनाया गया। इसका मकसद वाराणसी के पास चंद्रप्रभा नदी पर एक बांध बनाना था। इसकी सफलता को देखते हुए 1956 में उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में भी ऐसा ही प्रयोग किया गया। मौजूदा समय में खुली जेलों में करीब 100 से 1,000 तक बंदी रखे जाते हैं। डकैती और गंभीर अपराधों में लिप्त रहे बंदियों को इन जेलों में नहीं रखा जाता।

सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि समय आ गया है कि सभी राज्य खुली जेलों पर विचार करें। अदालत ने इसमें शिमला और दिल्ली की तिहाड़ जेल का खासतौर से उल्लेख किया है। भारत में तेलंगाना और मध्य प्रदेश में होशंगाबाद और इस साल मई में खुली सतना की खुली जेलों ने आधुनिक तरीके से कायाकल्प किया है। इसी तरह राजस्थान की जेलों में सामने आया कि कई कैदियों का आचरण अच्छा है, लेकिन खुली जेलों की संख्या और उनकी क्षमता कम होने की वजह से कैदियों को बंद जेलों में ही रहना पड़ रहा है।

खुली जेलों पर काम कर रहीं स्मिता चक्रवर्ती ने भी पाया कि जेलों में 90 फीसदी कैदी ऐसे हैं जो आदतन अपराधी नहीं है, लेकिन दुर्घटनावश किए अपराध की सजा भुगत रहे हैं। उन्होंने भी यह माँग की थी कि ऐसे कैदियों को खुली जेलों में शिफ्ट किया जाना चाहिए।

वहीं सुप्रीम कोर्ट के 11 सूत्रीय निर्देश में स्वतंत्रता के अधिकार, जेलों में मानवीय व्यवहार, जेलों में अप्राकृतिक मृत्यु वाले बंदियों के परिवारों को मुआवजा देने और एकाकीपन एवं कैद से निपटने के लिए काउंसलिंग पर विचार करने को भी कहा गया है। कोर्ट ने कैदियों के साथ व्यवहार के न्यूनतम स्तर के बारे में संयुक्त राष्ट्र महासभा की ओर से अपनाए गए मंडेला नियमों का भी जिक्र किया है।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय से भी कहा गया है कि वह जेलों में बच्चों और महिलाओं की देखभाल से जुड़े अपने अभियान को गति दे। देश भर में करीब 1800 बच्चे अपनी माता या पिता के साथ जेल में रहते हैं और उन्हें सिर्फ 6 साल तक ही उनके साथ जेलों में रहने की इजाजत होती है। ऐसे में खुली जेलों को लेकर सुप्रीम कोर्ट का निर्देश मील का पत्थर साबित होगा, लेकिन इसे लागू करना इतना आसान नहीं लगता। खुली जेलों से आशाएँ तो जगती हैं, लेकिन कुछ आशंकाएँ भी बाकी रह जाती हैं।

# GS World टीम...

## सारांश

- खुली जेलें तीन तरह की होती हैं। सेमी ओपन जेल, ओपन जेल और ओपन कालोनी। सेमी ओपन जेल में कैदी जेल के ही एक हिस्से में रहते हुए कुछ बंदिशों से मुक्त हो जाता है। ओपन जेल में वह जेल के बाहरी परिसर में रहते हुए जेल के खुले परिवेश में अपनी आजीविका कमा सकता है। इसमें परिवार से मुलाकात का भी प्रावधान होता है। वह रोज जेल से एक नियत समय के लिए बाहर जाकर वापस लौट सकता है। वहीं खुली कालोनी में बंदी कहीं भी बाहर जाकर किसी भी तरह के काम को करने के लिए आजाद रहता है। यानी खुली जेल ऐसी जेल होती है जिसमें जेल के सुरक्षा नियमों को काफी लचीला रखा जाता है। ऐसी जेलें बड़ी जेलों का ही एक बाहरी हिस्सा होती है जो सलाखों से काफी हद तक आजाद होती है। वहाँ कैदियों को आत्मअनुशासन एवं स्वरोजगार पर जोर दिया जाता है।
- ब्रिटेन में 70 के दशक में ही ओपन जेल शुरू कर दी गई थी। कुल 10 प्रतिशत बंदियों को इनमें भेजे जाने का प्रावधान था। भारत में भी राजस्थान और महाराष्ट्र में इस परिपाटी को अपनाया जा रहा है, लेकिन बाकी राज्य इसमें अभी पीछे हैं। इन्हीं खुली जेलों को लेकर लेकर सितंबर 2017 में सुप्रीम कोर्ट ने एक आदेश दिया कि पूरे देश में इसे लागू किया जाए। खुली जेलों पर जोर देने का यह फैसला संजय दत्त द्वारा दायर की गई जनहित याचिका के आधार पर लिया गया है।
- इस समय भारत में कुल 63 खुली जेलें हैं। इनमें से केवल चार ही महिलाओं के लिए हैं। यरवदा, तिरुअनंतपुरम और राजस्थान में दुर्गापुर एवं सांगानेर में महिलाओं के लिए खुली जेल का प्रावधान है। 2010 में यरवदा में देश की पहली महिला खुली जेल को शुरू कर दिया गया। बाकी 59 खुली जेलों में महिला कैदियों को रखने की सुविधा नहीं है। व्यापक परिदृश्य में देखें तो पूरे देश में इस समय 1382 जेलें हैं जिनमें से महिलाओं के लिए सिर्फ 18 ही हैं।
- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की 2015 की रिपोर्ट के मुताबिक भारतीय जेलों में क्षमता के मुकाबले 114.4 फीसदी ज्यादा कैदी बंद हैं और कुछ मामलों में तो यह तादाद छह सौ फीसदी तक है।
- दुनिया में पहली खुली जेल स्विट्जरलैंड में 1891 में बनी थी। फिर अमेरिका में 1916 में और ब्रिटेन में 1930 में बनाई गई। भारत में पहली खुली जेल 1905 में मुंबई में बनी और इसमें थाणे केंद्रीय जेल, बंबई के खास बंदियों को रखा गया, लेकिन इस खुली जेल को 1910 में बंद करना पड़ा।
- उत्तर प्रदेश में अनधिकृत तौर पर खुली जेल का पहला कैंप 1953 में बनाया गया। इसका मकसद वाराणसी के पास चंद्रप्रभा नदी पर एक बाँध बनाना था। इसकी सफलता को देखते हुए 1956 में उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में भी ऐसा ही प्रयोग किया गया। मौजूदा समय में खुली जेलों में करीब 100 से 1,000 तक बंदी रखे जाते हैं। डकैती और गंभीर अपराधों में लिप्त रहे बंदियों को इन जेलों में नहीं रखा जाता।
- सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि समय आ गया है कि सभी राज्य खुली जेलों पर विचार करें। अदालत ने इसमें शिमला और दिल्ली की तिहाड़ जेल का खासतौर से उल्लेख किया है। भारत में तेलंगाना और मध्य प्रदेश में होशंगाबाद और इस साल मई में खुली सतना की खुली जेलों ने आधुनिक तरीके से कायाकल्प किया है।
- सुप्रीम कोर्ट के 11 सूत्रीय निर्देश में स्वतंत्रता के अधिकार, जेलों में मानवीय व्यवहार, जेलों में अप्राकृतिक मृत्यु वाले बंदियों के परिवारों को मुआवजा देने और एकाकीपन एवं कैद से निपटने के लिए काउंसलिंग पर विचार करने को भी कहा गया है। कोर्ट ने कैदियों के साथ व्यवहार के न्यूनतम स्तर के बारे में संयुक्त राष्ट्र महासभा की ओर से अपनाए गए मंडेला नियमों का भी जिक्र किया है।
- देश भर में करीब 1800 बच्चे अपनी माता या पिता के साथ जेल में रहते हैं और उन्हें सिर्फ 6 साल तक ही उनके साथ जेलों में रहने की इजाजत होती है।

## बंदीगृह

- अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के मुताबिक हर कैदी को पर्याप्त जगह दी जानी चाहिए लेकिन इस 'पर्याप्त' शब्द को हर देश ने अपने हिसाब से परिभाषित किया है और यह कई बार इस बात पर भी निर्भर करता है कि बंदी जेल की अपनी कोठरियों में रोजाना कितना समय बिताते हैं।
- संयुक्त राष्ट्र के तय किए गए न्यूनतम मानक के अनुसार जेल की हर जेल और डारमिट्री में समुचित धूप और हवा होनी चाहिए। हर कैदी को अपना बेड और साफ बिस्तर मुहैया करवाया जाना चाहिए। रेडक्रॉस के मुताबिक हर कैदी को रहने के लिए कम से कम 3.4 वर्गमीटर होनी चाहिए।
- बंदीगृह राज्य द्वारा स्थापित और संचालित वह स्थान है, जहाँ बंदियों को सुधार, उपचार या संरक्षण के प्रयोजन से स्थाई और अस्थाई रूप से रखा जाता है। भारत में बंदीगृहों की व्यवस्था कारागृह अधिनियम, 1984 के अनुसार की जाती है।
- 1957 में नियुक्त अखिल भारतीयकारागार समिति ने 1960 में एक बन्दीगृह नियमावली नमूना तैयार किया जो कि बन्दियों के प्रति

व्यवहार के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम के अनुकूल था। बन्दियों के वर्गीकरण पर बल दिया गया जिसमें बन्दियों के लिंग, आयु, आपराधिक अभिलेख, दण्ड की अवधि, सुरक्षा, प्रशिक्षण व्यवहार तथा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए बन्दियों के वर्गीकरण पर बल दिया गया।

- संक्षिप्त अवधि के दण्डों की समाप्ति, परिवीक्षा तथा पैरोल का अधिक उपयोग, किशोर अपराधियों के लिए विशिष्ट कार्यक्रम तथा 16 वर्ष से 21 वर्ष की आयु के बन्दियों के लिए पृथक संस्थाएँ, बन्दीगृह कल्याण अधिकारियों की सहायता से बन्दियों के परिवार तथा अन्य पर्यावरणीय प्रभावों कोसमझते हुए बन्दियों की वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुसार उनके साथ व्यवहार, बन्दीगृहों से मुक्त किए गए अपराधियों की पश्चात्वर्ती देख रेख तथा पुनर्वास पर भी बल दिया।
- भारतीय कारागार व्यवस्था में वास्तविक सुधार का प्रारम्भ सन् 1836 से माना जाता है जब एक कारागार जाँच समिति का गठन किया गया जसने कारावासियों से सड़कों के निर्माण कार्य में मजदूर के रूप में कार्य लिया जाना बन्द किये जाने की अनुशंसा की। तत्पश्चात् सन् 1938 में मैकाले के सुझाव पर एक कारागार सुधार समिति गठित की गई
- दुनिया में पहली खुली जेल स्वीट्जरलैंड में 1891 में बनी थी। उसके बाद अमेरिका में 1916 में और ब्रिटेन में 1930 में बनाई गई। साल 1975 आते-आते अमेरीका में खुली जेलों की संख्या 25 हो गई, जबकि इंग्लैंड में 13 और भारत में 23। भारत में पहली खुली जेल 1905 में बम्बई में बनी और इसमें थाणे केन्द्रीय जेल, बम्बई के खास बंदियों को रखा गया।
- सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि कैदियों के मूलभूत अधिकारों को ठंडे बस्ते में नहीं डाला जा सकता। कोर्ट ने केंद्र सरकार और राज्यों से जेल के कैदियों के साथ जितना अधिक संभव हो, मानवीय व्यवहार करने के लिए कर्मचारियों को जागरूक करने के लिए कहा है। कोर्ट का कहना था कि राज्य सरकारों को जमानत के प्रत्येक आवेदन का विरोध करने या जाँच बाकी होने तक प्रत्येक संदिग्ध की रिमाँड माँगने की जरूरत नहीं है।
- कोर्ट ने कहा कि अगर संविधान के आर्टिकल-21 के तहत जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार वास्तविक अर्थ में दिया जाना है तो केंद्र और राज्य सरकारों को वास्तविकता स्वीकार करनी होगी और इस आधार पर नहीं चलना होगा कि कैदियों के साथ गुलाम जैसा व्यवहार किया जा सकता है।
- हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस से जेलों के अंदर मानवीय व्यवहार और सम्मान, जेलों के अंदर अप्राकृतिक मृत्यु वाले कैदियों के परिवार को मुआवजा देने और अकेलेपन और कैद से निपटने के लिए काउंसलिंग पर भी विचार करने को कहा गया है। कोर्ट ने परिवार से मुलाकात, फोन के जरिये संपर्क को भी बढ़ाने का सुझाव दिया है।

# PT / Mains - प्रश्न

## संभावित प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन जेलों में बंद कैदियों से संबंधित है?
   1. मॉडल प्रिज्म मैनुअल, 2017
   2. मंडेला नियम
   3. संयुक्त राष्ट्र संघ के नियम, 2010

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) केवल 1 और 2
   (b) केवल 2 और 3
   (c) केवल 1 और 3
   (d) 1, 2 और 3

   (उत्तर-D)

2. निम्नलिखित में कौन-सा/से खुली जेलों की श्रेणी में आते हैं?
   1. सेमी ओपन जेल
   2. ओपन जेल
   3. ओपन कॉलोनी

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) केवल 1 और 2
   (b) केवल 2 और 3
   (c) केवल 1 और 3
   (d) 1, 2 और 3

   (उत्तर-D)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. यरवदा में देश की पहली महिला खुली जेल को 2010 में शुरू किया गया।
   2. भारत में कुल खुली जेलों में सिर्फ चार में महिलाओं को रखने की सुविधा है।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-से कथन सत्य हैं?
   (a) केवल 1 और 2
   (b) केवल 2 और 3
   (c) केवल 2 और 3
   (d) 1, 2 और 3

   (उत्तर-D)

4. हाल ही में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जेलों में कैदियों की स्थिति पर दिए गए ग्यारह-सूत्रीय निर्देशों की समीक्षा कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. एमनेस्टी इंटरनेशनल है-
   (a) संयुक्त राष्ट्र की एक एजेन्सी जो सिविल वार के शरणार्थियों की मदद करती है।
   (b) एक वैश्विक मानवाधिकार आंदोलन
   (c) एक गैर-सरकारी स्वैच्छिक संगठन जो बहुत गरीब लोगों की मदद करती है।
   (d) एक अंत:सरकारी एजेन्सी जो युद्धग्रस्त क्षेत्रों में मेडिकल आपातकाल में मदद करती है।

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2015, उत्तर-B)

2. संयुक्त राष्ट्र के बच्चों के अधिकार कन्वेंशन के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. विकास का अधिकार
   2. अभिव्यक्ति का अधिकार
   3. मनोरंजन का अधिकार

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 1 और 3
   (c) केवल 2 और 3
   (d) 1, 2 और 3

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2010, उत्तर-B)

3. भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (एन.एच.आर.सी.) सर्वाधिक प्रभावी तभी हो सकता है, जब इसके कार्यों को सरकार की जवाबदेही को सुनिश्चित करने वाले अन्य यांत्रिकत्वों (मकैनिज्म) का पर्याप्त समर्थन प्राप्त हो। उपरोक्त टिप्पणी के प्रकाश में, मानव अधिकार मानकों की प्रोन्नति करने और उनकी रक्षा करने में, न्यायपालिका और अन्य संस्थाओं के प्रभावी पूरक के तौर पर, एन.एच.आर.सी. की भूमिका का आकलन कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2014)

GS World
Committed To Excellence

# लोकपाल की प्रतीक्षा

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन प्रणाली) से संबंधित है।*

**भारत में वर्ष 2013 में लोकपाल एवं लोकायुक्त कानून लागू हुआ था, लेकिन अभी तक लोकपाल का पद रिक्त पड़ा हुआ है। हाल में सर्वोच्च न्यायालय ने इस विषय में एक जनहित याचिका पर कड़ा रूख अपनाया है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'दैनिक ट्रिब्यून' तथा 'जनसत्ता' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## कोर्ट की सख्ती से जगी उम्मीदें (दैनिक ट्रिब्यून)

उच्चतम न्यायालय के सख्त रवैये के बाद क्या यह माना जाये कि 2019 के लोकसभा चुनावों की घोषणा से पहले देश में लोकपाल संस्था अस्तित्व में आ जायेगी और लोकपाल की नियुक्ति हो जायेगी। वैसे तो देश में भ्रष्टाचार निरोधक संस्था स्थापित करने की कवायद पिछले 50 साल से चल रही है। 2013 में जनता के आक्रोश और अन्ना हजारे के आमरण अनशन के आगे नतमस्तक होते हुए मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली संप्रग सरकार ने लोकपाल और लोकायुक्त कानून बनाया लेकिन इसके बावजूद पाँच साल में न तो लोकपाल संस्था स्थापित हुई और न ही लोकपाल की नियुक्ति हो सकी।

शीर्ष अदालत के कड़े रुख से ऐसा लगता है कि यदि एक निश्चित समय में लोकपाल नियुक्त नहीं किया गया तो शायद न्यायालय ही संविधान के अनुच्छेद 142 में प्रदत्त अपने अधिकार का इस्तेमाल करके सरकार द्वारा इसकी नियुक्ति करने तक की अवधि के लिये खुद ही लोकपाल की नियुक्ति कर देगा। यदि ऐसा होता है तो यह एक ऐतिहासिक कदम होगा और इससे नरेन्द्र मोदी सरकार की छवि पर भी धब्बा लगेगा।

यह संकेत उस वक्त मिला जब पूर्व कानून मंत्री और वरिष्ठ अधिवक्ता शांति भूषण ने न्यायालय से अनुरोध किया कि उसे अब संविधान के अनुच्छेद-142 में प्रदत्त अधिकार का इस्तेमाल करना चाहिए। इस पर न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति आर. भानुमति की पीठ ने कहा कि इस मामले में एक सक्षम अधिकारी का हलफनामा मिलने के बाद ही वह कोई आदेश पारित करेगा। इसमें हो रहे विलंब की वजह से ही इस कानून पर अमल का मुद्दा उच्चतम न्यायालय पहुँचा था। न्यायालय के अप्रैल, 2017 के फैसले के बावजूद लोकपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया ने गति नहीं पकड़ी।

अब इस फैसले पर अमल नहीं होने की वजह से न्यायालय में अवमानना याचिका लंबित है। न्यायालय चाहे तो अपने फैसले को लागू कराने के लिये संविधान के अनुच्छेद 142 का इस्तेमाल कर सकता है लेकिन ऐसा कोई आदेश देने से पहले वह सरकार का पक्ष जानना चाहता है। यही वजह है कि अब न्यायालय ने सरकार से दस दिन के भीतर यह जानना चाहा है कि लोकपाल की नियुक्ति से संबंधित कवायद पूरी करने में कितना समय लगेगा।

एक सवाल यह भी है कि आखिर लोकपाल संस्था का अध्यक्ष कौन बन सकता है? कानून के मौजूदा प्रावधानों के तहत लोकपाल संस्था का अध्यक्ष देश का प्रधान न्यायाधीश या पूर्व प्रधान न्यायाधीश या फिर उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश अथवा कोई ऐसा व्यक्ति जो इसके लिये निर्धारित योग्यता को पूरा करता हो।

## संपादकीय: लोकपाल का इंतजार (जनसत्ता)

यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है कि लोकपाल संबंधी कानून बन जाने के साढ़े चार साल बाद भी लोकपाल की नियुक्ति नहीं हो पाई है। इस बारे में सोमवार को सर्वोच्च न्यायालय ने उचित ही केंद्र सरकार से जवाब तलब किया। न्यायालय ने गैर-सरकारी संगठन 'कॉमन कॉज' की ओर से दायर याचिका पर सुनवाई करते हुए केंद्र को दस दिनों के भीतर हलफनामा दायर कर यह बताने को कहा है कि लोकपाल की नियुक्ति कब तक होगी और इस बारे में क्या कदम उठाए जा रहे हैं। अदालत की इस सख्ती को देखते हुए उम्मीद की जा सकती है कि लोकपाल संस्था का गठन होकर रहेगा और अब इसमें विलंब नहीं हो सकता। अब तक इसमें होती आ रही देरी की असल वजह सरकार की इच्छाशक्ति की कमी ही रही है। बहाना कानून के एक प्रावधान से पैदा हुई अड़चन का बनाया जाता रहा है। यूपीए सरकार के अंतिम दिनों में आम सहमति से पारित लोकपाल कानून में प्रावधान है कि लोकपाल का चयन करने वाली समिति में प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, लोकसभा में विपक्ष का नेता, देश के प्रधान न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित सर्वोच्च न्यायालय का कोई जज तथा एक प्रख्यात न्यायविद सदस्य होंगे। लेकिन हुआ यह कि यूपीए सरकार की विदाई के बाद से लोकसभा में विपक्ष का कोई मान्यता-प्राप्त नेता नहीं रहा है।

कांग्रेस विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी जरूर है, पर उसे लोकसभा में इतनी सीटें हासिल नहीं हो सकीं कि वह सदन में अपने नेता को नेता-प्रतिपक्ष का दर्जा दिला सके। नेता-प्रतिपक्ष न होने का हवाला देकर ही केंद्र सरकार लोकपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया टालती आई है। लेकिन वह चाहती तो नेता-प्रतिपक्ष के लिए आवश्यक न्यूनतम सदस्य-संख्या की शर्त को छोड़ लोकसभा में सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी के नेता को लोकपाल संबंधी चयन समिति में शामिल कर चयन की प्रक्रिया को काफी पहले ही मंजिल तक पहुँचा सकती थी। इस पर किसी को क्यों एतराज होता? लेकिन अमूमन कोई भी सरकार भ्रष्टाचार-विरोधी स्वायत्त संस्था पसंद नहीं करती। भाजपा विपक्ष में रहते हुए सीबीआइ को स्वायत्त बनाने की वकालत करती रही, मगर सत्ता में होने पर उसे यह जरूरी नहीं लगता कि सीबीआइ सरकार के नियंत्रण से आजाद हो। विपक्ष में रहते हुए भाजपा यह दोहराते नहीं थकती थी कि वह सशक्त लोकपाल चाहती है। लेकिन अब उसे लोकपाल संस्था का वजूद में आना शायद असुविधाजनक मालूम पड़ता होगा। लोकपाल कानून से पहले, सूचनाधिकार कानून बना था, सरकारी कामकाज में अधिक जवाबदेही और अधिक पारदर्शिता लाने के मकसद से। लेकिन सूचना आयोगों को लेकर भी केंद्र और भाजपा ने विचित्र रवैया अख्तियार कर रखा है।

लोकपाल संस्था के अध्यक्ष का कार्यकाल पाँच साल या फिर 70 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, का है। ऐसी स्थिति में पूर्व प्रधान न्यायाधीश तीरथ सिंह ठाकुर और न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहड़ इसकी पात्रता रखते हैं। इसके बाद मौजूदा प्रधान न्यायाधीश दीपक मिश्रा भी इस पद के दावेदार हो सकते हैं क्योंकि वह भी दो अक्तूबर को सेवानिवृत्त हो रहे हैं।

लोकपाल संस्था में अध्यक्ष के अलावा आठ सदस्य होंगे। इनमें से 50 फीसदी न्यायिक सदस्य होंगे। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश या फिर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ही इनके न्यायिक सदस्य हो सकते हैं। यही नहीं, इन आठ सदस्यों में कम से कम 50 फीसदी सदस्य अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछडे वर्ग, अल्पसंख्यक और महिलाओं के वर्ग से होंगे।

फिलहाल तो इस दिशा में ठोस प्रगति होने की संभावना संशय में ही लगती है क्योंकि लोकसभा में सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता मल्लिकार्जुन खड़गे बतौर विशेष आमंत्रित व्यक्ति के रूप में लोकपाल चयन समिति की बैठक में शामिल होने के मूड में नहीं नजर आ रहे। खड़गे के असहमति भरे रवैये के बावजूद इस समिति ने विधिवेत्ता के रिक्त स्थान के लिये पूर्व अटार्नी जनरल मुकुल रोहतगी की नियुक्ति करके अपनी मंशा भी जाहिर कर दी है।

लोकपाल और लोकायुक्त कानून, 2013 के तहत लोकपाल और इसके आठ सदस्यों की नियुक्ति के लिये चयनित नामों की राष्ट्रपति से सिफारिश करने वाली चयन समिति के सदस्यों में चूँकि प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, देश के प्रधान न्यायाधीश या उनके द्वारा मनोनीत व्यक्ति, प्रतिपक्ष के नेता और एक प्रबुद्ध व्यक्ति शामिल है, इसलिए इस प्रावधान की वजह से गतिरोध व्याप्त हो गया।

केंद्रीय सूचना आयोग (सीआइसी) और राज्यों के सूचना आयोगों (एसआइसी) में समय से नियुक्तियाँ न किए जाने से काफी सारे पद खाली पड़े हैं। लिहाजा लंबित अपीलों का बोझ बढ़ता जा रहा है, और यही हालत रही तो सूचना आयोग व्यवहार में पंगु होकर रह जाएगे। क्या यह सुनियोजित रूप से हो रहा है? जो हो, इस मसले पर भी केंद्र को अदालत की फटकार सुननी पड़ी है। सीआइसी और एसआइसी में बड़ी संख्या में रिक्त पदों के मुद्दे पर सर्वोच्च अदालत ने सोमवार को केंद्र से जवाब माँगा और कहा कि इससे ढेर सारी लंबित अपीलों और शिकायतों को निपटाने में दिक्कत हो रही है। यह उस सरकार का हाल है जो रोज भ्रष्टाचार से लड़ने का दम भरती है। अगर भ्रष्टाचार को सचमुच मिटाना है तो यह नारों और हवाई घोषणाओं से नहीं होगा, इसके लिए आरोपों का संज्ञान लेने वाली, जाँच करने वाली तथा अभियोजन वाली संस्थाओं को सक्षम व स्वायत्त बनाना होगा।

प्रतिपक्ष के नेता के मुद्दे सहित कई बिन्दुओं पर कानून में संशोधन करने और उसे संसद से मंजूर कराने की जरूरत थी। इस प्रक्रिया में हो रहे विलंब पर न्यायालय ने कड़ा रुख अपनाते हुए कहा था कि चयन समिति में पद रिक्त होना लोकपाल की नियुक्ति में किसी तरह से बाधक नहीं है। न्यायालय ने तो यहाँ तक कहा था कि कानून के मौजूदा प्रावधानों के अंतर्गत चयन समिति में प्रतिपक्ष के नेता के बगैर भी लोकपाल और इसके सदस्यों के चयन की प्रक्रिया पूरी तरह वैध होगी।

## GS World टीम...

### सारांश

- 2013 में जनता के आक्रोश और अन्ना हजारे के आमरण अनशन के आगे नतमस्तक होते हुए मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली संप्रग सरकार ने लोकपाल और लोकायुक्त कानून बनाया लेकिन इसके बावजूद पाँच साल में न तो लोकपाल संस्था स्थापित हुई और न ही लोकपाल की नियुक्ति हो सकी।
- यदि एक निश्चित समय में लोकपाल नियुक्त नहीं किया गया तो शायद न्यायालय ही संविधान के अनुच्छेद-142 में प्रदत्त अपने अधिकार का इस्तेमाल करके सरकार द्वारा इसकी नियुक्ति करने तक की अवधि के लिये खुद ही लोकपाल की नियुक्ति कर देगा।
- कानून के मौजूदा प्रावधानों के तहत लोकपाल संस्था का अध्यक्ष देश का प्रधान न्यायाधीश या पूर्व प्रधान न्यायाधीश या फिर उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश अथवा कोई ऐसा व्यक्ति जो इसके लिये निर्धारित योग्यता को पूरा करता हो।
- लोकपाल संस्था के अध्यक्ष का कार्यकाल पाँच साल या फिर 70 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, का है। लोकपाल संस्था में अध्यक्ष के अलावा आठ सदस्य होंगे। इनमें से 50 फीसदी न्यायिक सदस्य होंगे। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश या फिर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ही इनके न्यायिक सदस्य हो सकते हैं। यही नहीं, इन आठ सदस्यों में कम से कम 50 फीसदी सदस्य अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक और महिलाओं के वर्ग से होंगे।
- लोकपाल और लोकायुक्त कानून, 2013 के तहत लोकपाल और इसके आठ सदस्यों की नियुक्ति के लिये चयनित नामों की राष्ट्रपति से सिफारिश करने वाली चयन समिति के सदस्यों में चूँकि प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, देश के प्रधान न्यायाधीश या उनके द्वारा मनोनीत व्यक्ति, प्रतिपक्ष के नेता और एक प्रबुद्ध व्यक्ति शामिल हैं।
- कांग्रेस विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी जरूर है, पर उसे लोकसभा में इतनी सीटें हासिल नहीं हो सकीं कि वह सदन में अपने नेता को नेता-प्रतिपक्ष का दर्जा दिला सके।

### लोकपाल (ओम्बुड्समैन)

- लोकपाल उच्च सरकारी पदों पर आसीन व्यक्तियों द्वार किये जा रहे भ्रष्टाचार की शिकायतें सुनने एवं उस पर कार्यवाही करने के निमित्त पद है।
- स्वीडन में सर्वप्रथम 1809 में संविधान के अन्तर्गत ओम्बुड्समैन की स्थापना की गयी। फिनलैण्ड में 1918में, डेनमार्क में 1954में, नॉर्वे में 1961 में व ब्रिटेन में 1967में ओम्बुड्समैन (लोकपाल) की स्थापना भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए की गई। विभिन्न देशों में ओम्बुड्स को विभिन्न नामों से जाना जाता है। इंगलैण्ड में इसे संसदीय आयुक्त, सेवियत संघ में 'वक्ता' अथवा प्रोसिक्युटर व डेनमार्क एवं न्युजीलैण्ड में इंग्लैण्ड की तरह संसदीय आयुक्त के नाम से जानते है
- लोकपाल या ऑम्बुड्समैन नामक संस्था ने प्रशासन के प्रहरी बने रहने में अन्तर्राष्ट्रीय सफलता प्राप्त की है। इसका प्रारम्भिक श्रेय स्वीडन को जाता है, जहाँ सर्वप्रथम इस संस्था की अवधारणा की कल्पना की गई। वहाँ वर्ष 1713 में किंग चार्ल्स 12 ने कानून का उल्लंघन करने वाले अधिकारियों को दण्डित करने के लिए अपने एक सभासद को नियुक्त किया।

- स्वीडन में नया संविधान बनाने हेतु गठित संविधान सभा के सदस्यों का आग्रह रहा कि पूर्व व्यवस्था से भिन्न उनका ही एक अधिकारी जाँच का कार्य करे जो किसी भी स्थिति में सरकारी अधिकारी नहीं होना चाहिए। इस पर वर्ष 1809 में स्वीडन के संविधान में 'ऑम्बुड्समैन फॉर जस्टिस' के रूप में प्रथम बार इस संस्था की व्यवस्था हुई जो लोकसेवकों द्वारा कानूनों तथा विनियमों के उल्लंघन के प्रकरणों की जाँच करेगा।
- आम्बड्समैन स्वीडिश भाषा का एक शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ लोगों का रिप्रजेन्टेटिव या एजेन्ट होता है। वस्तुत: 'ऑम्बुड्समैन' का अर्थ एक ऐसे व्यक्ति से है जिसे कुप्रशासन, भ्रष्टाचार, विलम्ब, अकुशलता, अपारदर्शिता एवं पद के दुरूपयोग से नागरिक अधिकारों की रक्षा हेतु नियुक्त किया जाए।
- भारत में भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने प्रशासन के विरुद्ध नागरिकों की शिकायतों को सुनने एवं प्रशासकीय भ्रष्टाचार रोकने के लिए सर्वप्रथम लोकपाल संस्था की स्थापना का विचार रखा था जिसे स्वीकार नही किया गया। भारत में सन 1971 में लोकपाल विधेयक प्रस्तुत किया गया जो पाँचवीं लोकसभा के भंग हो जाने से पारित न हो सका।
- विश्व के अधिकांश देशों में जिस संस्था को ऑम्बुड्समैन कहा जाता है, उसे हमारे देश में लोकपाल या लोकायुक्त के नाम से जाना जाता है। भारत में लोकपाल या लोकायुक्त नाम 1963 में मशहूर कानूनविद डॉ. एल. एम. सिंघवी ने दिया था।

## लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम 2013

- 46 वर्षों की लम्बी प्रतीक्षा के बाद देश में लोकपाल की स्थापना की दिशा में मार्ग दिसंबर 2013 में उस समय प्रशस्त हो गया, जब इसके लिए लाए गए विधेयक (लोकपाल एवं लोकायुक्त विधेयक) को संसद के दोनों सदनों में पारित कर दिया गया, जिसके पश्चात् भारत के राष्ट्रपति ने लोकपाल एवं लोकायुक्त विधेयक को 1 जनवरी, 2014 को स्वीकृति प्रदान की।
- अतीत में लोकपाल कानून बनाने के सभी प्रयास विफल रहे। लोकसभा में लोकपाल पर आठ विधेयक पेश किये गये थे, लेकिन 1985 के विधेयक को छोड़कर विभिन्नक लोकसभाओं के भंग होने के कारण ये विधेयक अधर में रह गये।
- लोकपाल की संस्था में एक अध्यक्ष होगा, जो या तो भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश या फिर सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश या फिर कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो सकते हैं। लोकपाल में अधिकतम आठ सदस्य हो सकते हैं, जिनमें से आधे न्यायिक पृष्ठभूमि से होने चाहिए।
- यह भी व्यवस्था दी गई है कि लोकपाल संस्था के कम से कम आधे सदस्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यकों और महिलाओं में से होने चाहिए। योग्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ईमानदार एवं विशेष ज्ञान के साथ अद्वितीय योग्यता वाला हो, तथा भ्रष्टाचार निरोधी नीति, लोक प्रशासन, सतर्कता, बीमा, बैंकिंग, कानून और प्रबंधन के मामलों में कम-से-कम 25 वर्ष का विशेष ज्ञान एवं विशेषज्ञता रखता हो। व्यक्ति को न्यायिक सदस्य के तौर पर नियुक्त किया जा सकता है, यदि वह उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो या रहा हो या किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश हो या रहा हो।
- वह व्यक्ति लोकपाल का अध्यक्ष या सदस्य बनाए जाने के अयोग्य है:
  - संसद सदस्य या किसी राज्य या केंद्रशासित प्रदेश की विधान सभा का सदस्य।
  - ऐसा व्यक्ति जिसे किसी किस्म के नैतिक भ्रष्टाचार का दोषी पाया गया हो।
  - ऐसा व्यक्ति जिसकी उम्र अध्यक्ष या सदस्य पद ग्रहण करने तक 45 साल न हुई हो।
  - किसी पंचायत या निगम का सदस्य।
  - ऐसा व्यक्ति जिसे राज्य या केंद्र सरकार की नौकरी से बर्खास्त किया गया हो।
- लोकपाल के अध्यक्ष और सदस्यों का चयन एक 'चयन समिति' के माध्यम से किया जाएगा, जिसमें भारत के प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, लोकसभा में विपक्ष के नेता, भारत के प्रमुख न्यायाधीश या मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामित सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश शामिल होगा। एक अन्य सदस्य कोई प्रख्यात विधिवेत्ता होगा जिसे इन चार सदस्यों की सिफारिश पर राष्ट्रपति नामित करेंगे।
- लोकपाल कुशासन, अनुचित लाभ पहुँचाने या भ्रष्टाचार से संबंधित मामले जो किसी मंत्री या केंद्र या राज्य सरकार के सचिव के अनुमोदन से की गई प्रशासनिक कार्रवाई के खिलाफ में पीड़ित व्यक्ति द्वारा लिखित शिकायत किए जाने पर या स्वत: संज्ञान लेते हुए, जाँच कर सकता है। लेकिन लोकपाल पीड़ित व्यक्ति को अदालत या वैधानिक न्यायाधिकरण से मिली किसी भी फैसले के संबंध में किसी प्रकार की जाँच नहीं कर सकता है।
- केंद्र सरकार को भ्रष्टाचार के मामलों की सुनवाई के लिए उतनी विशेष अदालतों का गठन करना होगा जितनी लोकपाल बताए। विशेष अदालतों को मामला दायर होने के एक साल के भीतर उसकी सुनवाई पूरी करना सुनिश्चित करना होगा। यदि एक साल में यह सुनवाई पूरी नहीं हो पाती तो विशेष अदालत इसके कारण दर्ज करेगी और सुनवाई तीन महीने में पूरी करनी होगी। यह अवधि तीन-तीन महीने के हिसाब से बढ़ाई जा सकती है, लेकिन कुल दो वर्ष से अधिक समय तक नहीं बढ़ाई जा सकती।
- भारत के राष्ट्रपति, आदेश द्वारा कोई पद, अध्यक्ष या किसी सदस्य को हटा सकता है, यदि अध्यक्ष या ऐसा सदस्य, (a) दिवालिया घोषित होता है; या (b) अपने कार्यकाल के दौरान किसी अन्य लाभ के पद पर रहता है; या राष्ट्रपति के विचार में शारीरिक या मानसिक रूप से पदासीन रहने में अक्षम हो गया है। हालाँकि अध्यक्ष या किसी सदस्य को राष्ट्रपति के आदेश द्वारा कदाचार के आधार पर भी हटाया जा सकेगा लेकिन ऐसा केवल कम से कम 100 सांसदों द्वारा हस्ताक्षरित याचिका पर राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय से अध्यक्षीय संदर्भ लेने के पश्चात् और इस संदर्भ में यथोचित प्रक्रिया एवं जाँच के प्रतिवेदन के पश्चात् ही किया जा सकेगा।
- अधिनियम में झूठी और फर्जी शिकायतें करने वालों को एक साल की सजा और एक लाख रुपए के जुर्माने का प्रावधान है। सरकारी कर्मचारियों के लिए सात साल की सजा का प्रावधान है। आपराधिक कदाचार और आदतन भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाले को 10 साल की सजा होगी।

# PT / Mains - प्रश्न

## संभावित प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत में लोकपाल संस्था में अध्यक्ष के अलावा कुल आठ सदस्य होंगे।
   2. इन आठ सदस्यों में से 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक एवं महिला वर्ग से होंगे।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

2. भारत में लोकपाल संस्था के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।
   1. इसके अध्यक्ष का कार्यकाल 5 वर्ष या 70 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, तक का है।
   2. इसके कुल सदस्यों में से आधे सदस्य न्यायिक सदस्य होंगे।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सही है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-D)

3. भारत में लोकपाल और इसके सदस्यों की नियुक्ति के लिए चयनित नामों की राष्ट्रपति से सिफारिश करने वाली चयन समिति में शामिल हैं-
   1. प्रधानमंत्री
   2. लोकसभा अध्यक्ष
   3. देश के प्रधान न्यायाधीश या उनके द्वारा मनोनीत व्यक्ति
   4. विपक्ष के नेता
   5. एक प्रबुद्ध व्यक्ति
   6. राज्यसभा अध्यक्ष

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) 1, 2, 3, 4 और 5
   (b) 1, 2, 3, 4 और 6
   (c) 1, 2, 3, 5 और 6
   (d) 1, 3, 4, 5 और 6

   (उत्तर-A)

4. विश्व में सर्वप्रथम किस देश में लोकपाल संस्था की स्थापना हुई थी?
   (a) स्वीडन (b) नॉर्वे
   (c) इंग्लैण्ड (d) डेनमार्क

   (उत्तर-A)

5. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत में लोकपाल या लोकायुक्त नाम सर्वप्रथम कानूनविद् डॉ. एल. एम. सिंघवी ने दिया था।
   2. भारत में पहली बार 1971 में संसद में लोकपाल विधेयक प्रस्तुत किया गया जो पारित नहीं हो पाया।
   3. भारत में लोकपाल संस्था की स्थापना की सिफारिश प्रशासनिक आयोग ने की थी।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 2
   (b) केवल 3
   (c) केवल 1 और 2
   (d) इनमें से कोई नहीं

   (उत्तर-D)

6. भारत में लगातार बढ़ते भ्रष्टाचार को रोकने में लोकपाल जैसी संस्थाओं की क्षमताओं का विश्लेषण कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. भारत में बैंकिंग-लोकपाल की संस्था के संदर्भ में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन असत्य है?
   (a) बैंकिंग-लोकपाल की नियुक्ति, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया करता है।
   (b) बैंकिंग-लोकपाल, गैर-प्रवासी भारतीयों जिनके खाते भारत में हैं, से शिकायतें प्राप्त कर सकता है।
   (c) बैंकिंग-लोकपाल द्वारा पारित आदेश अंतिम एवं संबंधित पक्षों पर बाध्य है।
   (d) बैंकिंग-लोकपाल द्वारा प्रदत्त सेवाएँ किसी भी शुल्क से मुक्त है।

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2010, उत्तर-C)

2. यद्यपि अनेक लोक सेवा प्रदान करने वाले संगठनों ने नागरिकों के घोषणा-पत्र (चार्टर) बनाए हैं, पर दी जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता और नागरिकों के संतुष्टि स्तर में अनुकूल सुधार नहीं हुआ है। विश्लेषण कीजिए।
   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2013)

3. 'राष्ट्रीय लोकपाल कितना भी प्रबल क्यों न हो, सार्वजनिक मामलों में अनैतिकता की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। विवेचना कीजिए।
   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2013)

GS World
Committed To Excellence

# भारत में पुलिस-सुधार की स्थिति

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।*

**देश में तकरीबन 100 से ज्यादा वर्षों से पुलिस सुधार की दिशा में कोई ठोस प्रगति नहीं हुई है। भारतीय पुलिस की छवि एवं कार्यशैली को सुधारने की आवश्यकता एवं उसकी दशा-दिशा की समीक्षा महत्त्वपूर्ण है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'दैनिक जागरण' तथा 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## अगर भारत को महाशक्ति बनना है तो पुलिस सुधारों पर अमल करना होगा (दैनिक जागरण)

पुलिस सुधार के लिए संघर्ष पिछले लगभग 22 वर्ष से चल रहा है। इस संबंध में 1996 में सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका दायर की गई थी। इस पर दस वर्ष बाद 2006 में फैसला आ पाया। सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में छह दिशा-निर्देश राज्य सरकारों के लिए दिए और एक दिशा-निर्देश केंद्र सरकार के लिए। राज्य सरकारों को दिए गए दिशा-निर्देशों में एक पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति को लेकर था। सुप्रीम कोर्ट का आदेश था कि राज्य सरकार जब एक बार किसी अधिकारी को पुलिस महानिदेशक पद पर नियुक्त कर दे तो उसे कम से कम दो साल का कार्यकाल मिलना चाहिए। इस बीच यदि उसकी सेवानिवृत का समय आ जाए तो उसका कार्यकाल आगे बढ़ा दिया जाए। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि पुलिस महानिदेशक प्रदेश को सही नेतृत्व एवं दिशा दे सके और जो भी योजनाएँ हों उन्हें अपने कार्यकाल में वांछित गति देने में समर्थ हो सके।

दुर्भाग्य से राज्य सरकारों ने इन दिशा-निर्देशों का खुला उल्लंघन किया। उत्तर प्रदेश की पिछली सरकार ने तो मनमानी की हद ही कर दी। एक बार पुलिस महानिदेशक पद पर अरुण कुमार गुप्ता की नियुक्ति केवल एक महीने के लिए ही हुई। इसी तरह अरविंद जैन और रिजवान अहमद को भी दो-दो महीने के लिए पुलिस महानिदेशक बनाया गया। जगमोहन यादव छह महीने के लिए, देवराज नागर करीब आठ महीने के लिए, आनंद लाल बनर्जी दस महीने के लिए पुलिस महानिदेशक बनाए गए। अन्य राज्यों में भी मनमानी की गई। पश्चिम बंगाल में एक डीजीपी को रिटायरमेंट से पहले दो साल का कार्यकाल दिया गया। तमिलनाडु में भी एक डीजीपी को रिटायरमेंट के पहले दो साल का कार्यकाल मिला। यह भी देखने में आया कि अधिकांश राज्य सरकारें पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति में संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) से परामर्श नहीं ले रही थीं, जबकि सुप्रीम कोर्ट का निर्देश यही था।

केंद्रीय गृह मंत्रालय ने पुलिस महानिदेशक की नियुक्तियों में इन विकृतियों का संज्ञान लिया और सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। अच्छा होता कि वह उन राज्यों के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट की अवमानना का मामला चलाने की बात कहता जो पुलिस महानिदेशकों की नियुक्तियों में मनमानी कर रहे थे। उसने राज्य सरकारों द्वारा सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों के उल्लंघन को आधार बनाकर यह माँग की कि पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति संबंधी आदेश में संशोधन किया जाए। उसकी यह भी दलील थी कि पुलिस महानिदेशक का कार्यकाल दो साल के बजाय सेवानिवृत तक ही सीमित रखा जाए। गृह मंत्रालय के इस रवैये को अच्छा नहीं कहा जा सकता। लगता है कि इसके पीछे नौकरशाही की चाल थी। जो भी हो,

## पुलिस सुधार: सुप्रीम कोर्ट ने डीजीपी की नियुक्ति में बांधे राज्यों के हाथ (दैनिक जागरण)

सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस सुधारों पर अपने दिशा-निर्देशों की अनदेखी का संज्ञान लेकर बिल्कुल सही किया। अच्छा होता कि वह समय रहते यह देखता कि उसके दिशा-निर्देशों पर अमल क्यों नहीं हो रहा है? कम से कम अब तो उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि न केवल पुलिस प्रमुखों की नियुक्ति उसके द्वारा दी गई व्यवस्था के हिसाब से हो, बल्कि उसके पुराने दिशा-निर्देशों पर भी सही तरह से अमल हो। ऐसा इसलिए, क्योंकि 2006 में पुलिस सुधारों को लेकर दिए गए उसके सात सूत्रीय दिशा-निर्देशों से बचने की कोशिश तत्कालीन केंद्र सरकार ने भी की और राज्य सरकारों ने भी।

एक-दो राज्यों को छोड़कर बाकी सबने पुलिस सुधारों की दिशा में आगे बढ़ने के बजाय तरह-तरह के बहाने ही बनाए। इस बहानेबाजी के मूल में थी पुलिस का मनमाफिक इस्तेमाल करने की आदत। दरअसल राजनीतिक दलों की इस आदत ने ही पुलिस सुधारों की राह रोके रखी। राजनीतिक दलों की इसी प्रवृत्ति के चलते पुलिस सुधार संबंधी दिशा-निर्देश एक तरह से ठंडे बस्ते में पड़े रहे।

कायदे से मोदी सरकार को पुलिस सुधार को अपने एजेंडे पर लेना चाहिए था, लेकिन उसने शासन तंत्र को दुरुस्त करने की अपनी प्रतिबद्धता के बावजूद ऐसा नहीं किया। ऐसे हालात में इसके अलावा और कोई उपाय नहीं था कि खुद सुप्रीम कोर्ट अपने एक महत्त्वपूर्ण फैसले की अनदेखी पर गौर करता। चूँकि केंद्र सरकार समेत राज्य सरकारें पुलिस सुधारों के प्रति गंभीर नहीं थीं इसलिए सुप्रीम कोर्ट ने कार्यवाहक पुलिस प्रमुखों की नियुक्ति पर रोक लगाकर बिल्कुल सही किया।

यह अजीब है कि सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों में कार्यवाहक पुलिस प्रमुख का कोई जिक्र न होने के बाद भी कई राज्य इस पद पर नियुक्ति करने में लगे हुए थे। सुप्रीम कोर्ट के ताजा आदेश के तहत अब सभी राज्य पुलिस प्रमुख यानी डीजीपी की नियुक्ति के तीन माह पहले शीर्ष पुलिस अधिकारियों के नाम संघ लोक सेवा आयोग को भेजेंगे। यह आयोग इनमें से तीन अधिकारियों का एक पैनल बनाएगा। इसी पैनल से किसी एक नाम का चयन करने की सुविधा राज्य सरकारों के पास होगी।

यदि एक बार पुलिस प्रमुख की नियुक्ति सही तरह से हो जाती है और उसका कार्यकाल भी कम से कम दो वर्ष तय हो जाता है तो फिर यह उम्मीद की जा सकती है कि वह पुलिस की कार्यप्रणाली को दुरुस्त करने के कुछ ठोस उपाय कर सकता है। अभी तो पुलिस प्रमुख अपनी कुर्सी बचाने की चिंता में ही अधिक रहते हैं। उन्हें इस चिंता से मुक्त होकर कानून एवं व्यवस्था को दुरुस्त करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट में गृह मंत्रालय के सुझाव का कड़ा विरोध किया गया। सारी बहस सुनने के बाद कोर्ट ने अपने मूल दिशा-निर्देशों को यथावत रखते हुए निम्नलिखित स्पष्टीकरण दिए:

- पुलिस महानिदेशक के रिटायरमेंट के तीन महीने पहले राज्य सरकारों की यह बाध्यता होगी की वे संघ लोक सेवा आयोग को अपना प्रस्ताव उपयुक्त अधिकारियों के नाम सहित भेजे।
- संघ लोक सेवा आयोग राज्य की ओर से भेजी गई पुलिस अधिकारियों की सूची में से तीन के नाम का चयन करते हुए उसे वापस भेजेगा।
- राज्य सरकार इसी तीन नाम वाले पैनल में से एक अधिकारी को पुलिस महानिदेशक के पद पर नियुक्त करेगी।
- कोई भी राज्य कार्यवाहक पुलिस महानिदेशक नियुक्त नहीं करेगा।
- प्रयास यह होगा कि जो भी अधिकारी पुलिस महानिदेशक के पद पर नियुक्त किया जाए वह सेवानिवृति के बाद भी उचित समय तक अपने पद पर बना रहे।
- संघ लोक सेवा आयोग यथासंभव ऐसे अधिकारियों का ही पैनल बनाए जिनके सेवा काल का दो वर्ष बाकी हो। पैनल बनाते समय योग्यता और वरिष्ठता का ध्यान रखा जाए।
- उपरोक्त निर्देशों के विपरीत राज्य या केंद्र सरकार की ओर से बनाया गया कोई भी नियम या अधिनियम लंबित रखा जाए।

सर्वोच्च न्यायालय के इस आदेश का स्वागत किया जाना चाहिए। इस फैसले से पुलिस महानिदेशक की नियुक्तियों में मनमानी पर कुछ रोक तो अवश्य लगेगी। वैसे मेरा अनुभव यही कहता है कि राज्य सरकारों को जो आदेश नागवार गुजरता है उसकी अनदेखी करने का वे कोई न कोई बहाना ढुँढ़ निकालती हैं। अगर राज्य सरकारें ऐसा करें तो फिर सुप्रीम कोर्ट को डंडा चलाने में हिचकना नहीं चाहिए। केवल आदेश देना ही पर्याप्त नहीं है। एक पूर्व केंद्रीय गृह सचिव ने मुझसे कहा था कि जब तक किसी प्रदेश के गृह सचिव और पुलिस महानिदेशक को जेल नहीं भेजा जाएगा तब तक राज्य सरकारें मनमानी करती रहेंगी। इस मामले में सुप्रीम कोर्ट में कई अवमानना याचिकाएँ लंबित पड़ी हैं, लेकिन दुर्भाग्य से उसने किसी के खिलाफ कोई नोटिस जारी नहीं की।

पुलिस सुधार के मामले में ध्यान रहे कि पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति संबंधी दिशा-निर्देश के अलावा राज्य सरकारों के लिए पाँच और दिशा-निर्देश भी थे। इनके तहत राज्य स्तर पर एक सुरक्षा आयोग बनाने की बात थी जो नीतिगत विषयों पर पुलिस का मार्गदर्शन करेगा। कई राज्यों ने यह आयोग तो बनाया, परंतु उसमें निष्पक्ष लोगों के बजाय अपने समर्थकों को भर दिया। इसके अधिकारों में भी कटौती कर दी गई। यह भी कहा गया कि इस आयोग की संस्तुति राज्य सरकार के लिए केवल सुझाव के तौर पर होगी। इसी प्रकार स्थापना बोर्ड के गठन में भी घपले हैं।

एक राज्य ने अतिरिक्त मुख्य सचिव को स्थापना बोर्ड का चेयरमैन बना दिया, जबकि इस बोर्ड को पुलिस महानिदेशक के नेतृत्व में काम करना चाहिए। केंद्र सरकार की भी यह कोशिश है कि स्थापना बोर्ड को खत्म कर दिया जाए। पुलिस शिकायत आयोग के गठन में भी अनियमितताएँ हैं। कुछ प्रदेशों में इनके मुखिया जिलाधिकारी या कमिश्नर हैं, जबकि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के अनुसार यह आयोग रिटायर्ड जज के अधीन होना चाहिए। तफ्तीश और शांति व्यवस्था के लिए सुप्रीम कोर्ट ने अलग-अलग स्टाफ तय करने की बात कही थी। इस दिशा में भी प्रगति शिथिल है।

ऑपरेशनल ड्यूटी पर तैनात अधिकारियों को भी जब-तब स्थानांतरित कर दिया जाता है, जबकि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के अनुसार उनका भी कार्यकाल दो साल का होना चाहिए। इसके अलावा पुलिस सुधार के और भी बहुत से पहलू हैं। एक तो पुलिस के संख्याबल में वृद्धि होनी चाहिए और दूसरे, सभी पुलिसकर्मियों को आवासीय सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। इसी तरह पुलिस वाहन की संख्या, संचार व्यवस्था के आधुनिकीकरण और फोरेंसिक लैब की संख्या भी बढ़ाए जाने की दरकार है।

प्रधानमंत्री हमेशा देश के विकास की बात करते हैं, परंतु विकास के लिए कानून एवं व्यवस्था का सुदृढ़ होना आवश्यक है। बालू के ढेर पर विकास का महल नहीं खड़ा किया जा सकता। अगर भारत को एक महाशक्ति बनना है तो फिर पुलिस सुधारों की दिशा में सही तरह से आगे बढ़ना अति आवश्यक है।

सत्तारूढ़ नेताओं को भी यह समझना होगा कि पुलिस सुधारों से और अधिक समय तक बचा नहीं जा सकता। सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला एक बार फिर यह बता रहा है कि किस तरह जो काम कार्यपालिका को करने चाहिए वे न्यायपालिका को करने पड़ रहे हैं। पुलिस सुधार की अनदेखी के इस मामले में आखिर राजनीतिक दल किस मुँह से यह कह सकते हैं कि न्यायपालिका अपनी सीमा लांघ रही है? यह भी ध्यान रहे कि जहाँ सत्तारूढ़ दल पुलिस सुधारों से कन्नी काटते रहे, वहीं विपक्षी दल भी इस पर मौन साधे रहे।

## डीजीपी वाया यूपीएससी (नवभारत टाइम्स)

राज्यों में पुलिस महानिदेशक (डीजीपी) की नियुक्ति के संबंध में जारी किया गया सुप्रीम कोर्ट का ताजा दिशा-निर्देश पुलिस सुधारों की दिशा में एक जरूरी पहल है। सुप्रीम कोर्ट ने साफ कह दिया है कि डीजीपी नियुक्त करने के मामले में अपनी मनमर्जी चलाने के बजाय राज्य सरकार यह पद खाली होने से कम से कम तीन महीने पहले संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) को सूचना दे। कोर्ट द्वारा तय मानकों के हिसाब से यूपीएससी इस पद के योग्य ऑफिसरों की एक सूची राज्य सरकार को देगी और सरकार उस लिस्ट में से ही किसी एक को इस पद पर नियुक्त करेगी। निर्देश में यह भी स्पष्ट किया गया है कि डीजीपी का कार्यकाल कम से कम दो साल होगा। अगर इससे पहले उसके रिटायरमेंट की तारीख आ जाती है तो भी कार्यकाल पर कोई असर नहीं होगा। पुलिस सुधारों से जुड़े इन कदमों की अहमियत इस बात से महसूस की जा सकती है कि लंबे समय से सरकारों के संज्ञान में होने के बावजूद इन्हें अमल में लाने की कोशिश नहीं की जा रही थी। सरकारों के रुख से निराश होकर दो पूर्व डीजीपी प्रकाश सिंह और एन.के. सिंह पुलिस सुधार आयोग की सिफारिशें लागू करवाने की गुजारिश लेकर कोर्ट पहुँचे थे। सुप्रीम कोर्ट ने 2006 में ही फैसला दे दिया था कि डीजीपी पद पर नियुक्ति यूपीएससी द्वारा तैयार की गई तीन सबसे सीनियर अफसरों की सूची में से ही की जाए।

फिर भी ज्यादातर राज्य सरकारें पिछले 12 साल से सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश की अनदेखी करती रहीं। कुल 29 में से 24 राज्य सरकारें कभी यूपीएससी के पास गई ही नहीं। आखिरकार केंद्र की ओर से दाखिल याचिका पर सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकारों के लिए अगर-मगर की गुंजाइश ही खत्म कर दी। हालाँकि अहम प्रशासनिक पद पर नियुक्ति की प्रक्रिया में चुनी हुई सरकार की भूमिका कम करके एक गैरनिर्वाचित निकाय की भूमिका बढ़ाने पर कुछ जायज संदेह भी उठाए जा सकते हैं, लेकिन यहाँ अलग से यह रेखांकित करना जरूरी है कि फैसले का अधिकार अंतिम रूप से राज्य सरकार के ही पास है। यूपीएससी की भूमिका यहाँ सहयोगात्मक ही रखी गई है। उम्मीद करें कि इन उपायों से राज्य सरकार को सर्वश्रेष्ठ पुलिस प्रशासक मिलेंगे, जिनके सामने राजनीतिक स्वार्थों के दबाव में चलने की मजबूरी नहीं होगी।

GS World
Committed To Excellence

## सारांश

- राज्यों में पुलिस महानिदेशक (डीजीपी) की नियुक्ति के संबंध में जारी किया गया सुप्रीम कोर्ट का ताजा दिशा-निर्देश पुलिस सुधारों की दिशा में एक जरूरी पहल है। सुप्रीम कोर्ट ने साफ कह दिया है कि डीजीपी नियुक्त करने के मामले में अपनी मनमर्जी चलाने के बजाय राज्य सरकार यह पद खाली होने से कम से कम तीन महीने पहले संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) को सूचना दे।
- कोर्ट द्वारा तय मानकों के हिसाब से यूपीएससी इस पद के योग्य ऑफिसरों की एक सूची राज्य सरकार को देगी और सरकार उस लिस्ट में से ही किसी एक को इस पद पर नियुक्त करेगी। निर्देश में यह भी स्पष्ट किया गया है कि डीजीपी का कार्यकाल कम से कम दो साल होगा। अगर इससे पहले उसके रिटायरमेंट की तारीख आ जाती है तो भी कार्यकाल पर कोई असर नहीं होगा।
- सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों में कार्यवाहक पुलिस प्रमुख का कोई जिक्र न होने के बाद भी कई राज्य इस पद पर नियुक्ति करने में लगे हुए थे।
- सुप्रीम कोर्ट के ताजा आदेश के तहत अब सभी राज्य पुलिस प्रमुख यानी डीजीपी की नियुक्ति के तीन माह पहले शीर्ष पुलिस अधिकारियों के नाम संघ लोक सेवा आयोग को भेजेंगे। यह आयोग इनमें से तीन अधिकारियों का एक पैनल बनाएगा। इसी पैनल से किसी एक नाम का चयन करने की सुविधा राज्य सरकारों के पास होगी।
- सुप्रीम कोर्ट ने 2006 में ही फैसला दे दिया था कि डीजीपी पद पर नियुक्ति यूपीएससी द्वारा तैयार की गई तीन सबसे सीनियर अफसरों की सूची में से ही की जाए। फिर भी ज्यादातर राज्य सरकारें पिछले 12 साल से सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश की अनदेखी करती रहीं। कुल 29 में से 24 राज्य सरकारें कभी यूपीएससी के पास गईं ही नहीं।
- ऑपरेशनल ड्यूटी पर तैनात अधिकारियों को भी जब-तब स्थानांतरित कर दिया जाता है, जबकि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के अनुसार उनका भी कार्यकाल दो साल का होना चाहिए।

## भारतीय पुलिस व्यवस्था

- सर्वप्रथम ब्रिटिश भारत में इस विभाग की स्थापना गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस (1786-93 ई.) ने की। कलकत्ता, ढाका, पटना तथा मुर्शिदाबाद में चार अधीक्षकों के अधीन पुलिस रखी गई। क्रमश: प्रत्येक जिले में एक पुलिस अधीक्षक की नियुक्ति हुई। उसके अधीन प्रत्येक सब-डिवीजन में एक उप-पुलिस अधीक्षक, प्रत्येक सर्किल में एक पुलिस इंस्पेक्टर तथा प्रत्येक थाने में एक थानाध्यक्ष होता था।
- 1861 ई. के पुलिस एक्ट के द्वारा पुलिस को प्रान्तीय संगठन बना दिया गया और उसका प्रशासन सम्बन्धित प्रान्तीय सरकारों के जिम्मे कर दिया गया। प्रत्येक प्रान्त के पुलिस संगठन का प्रधान पुलिस महानिरीक्षक होता है, जो कि उसका नियंत्रण करता है।
- 1902 ई. में पुलिस प्रशासन की जाँच करने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की गई और उसकी सिफारिशों के आधार पर पुलिस दल में सुधार करने और उसका मनोबल ऊँचा उठाने के लिए कदम उठाये गये। एक खुफिया जाँच विभाग की स्थापना की गई तथा अंतरप्रान्तीय समन्वय के लिए केन्द्रीय सरकार के गृह विभाग के अधीन केन्द्रीय खुफिया विभाग गठित किया गया।
- देश में पुलिस बल को सार्वजनिक व्यवस्था का रख-रखाव करने तथा अपराधों की रोकथाम और उनका पता लगाने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। भारत के प्रत्येक राज्य और केंद्रशासित प्रदेश का अपना अलग पुलिस बल है।
- भारत के संविधान का अनुच्छेद-246 पुलिस को राज्य सूची में रखता है जिसका मतलब यह है कि प्रत्येक राज्य सरकार पुलिस बल को शासित करने वाले नियम और विनियम बनाती है। ये नियम और विनियम प्रत्येक राज्य के पुलिस बल की नियमावली में सन्निहित हैं।
- राज्य के पुलिस बल का मुख्य पुलिस महानिदेशक/पुलिस महानिरीक्षक होता है। प्रत्येक राज्य को सुविधाजनक क्षेत्रीय मंडलों में बाँटा गया है, जो रेंज कहलाता है और प्रत्येक पुलिस रेंज पुलिस, उपमहानिरीक्षक के प्रशासनिक नियंत्रण में होता है। एक रेंज में कई जिले होते हैं।
- जिला पुलिस को और आगे पुलिस डिवीजन, सर्कलों और थानों में विभाजित किया गया है। सिविल पुलिस के अलावा राज्य अपनी स्वयं की सशस्त्र पुलिस भी रखते हैं और उनमें अलग से गुप्तचर शाखाएँ अपराध शाखाएँ आदि होती हैं। दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, चेन्नई, बंगलुरू, हैदराबाद, अहमदाबाद, नागपुर, पुणे, भुवनेश्वर-कटक जैसे बड़े शहरों में पुलिस व्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से पुलिस आयुक्त के अधीन होती है।
- केन्द्रीय सरकार केंद्रीय पुलिस बल रखती है, इसके पास गुप्तचर ब्यूरो (आईबी), केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई), पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए संस्थायें और विधि विज्ञान संस्थायें हैं। यह संस्थायें राज्यों को सूचना एकत्र करने, कानून व्यवस्था बनाए रखने, विशेष आपराधिक मामलों की जाँच करने और राज्य सरकारों के वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को प्रशिक्षण देने में सहायता प्रदान करती हैं।
- गृहरक्षा विभाग के अन्तर्गत आने वाला विभाग होने से देश की कानून व्यवस्था को संभालने का काम पुलिस के हाथ ही होता है। आपराधिक गतिविधियों को रोकने, अपराधियों को पकड़ने, अपराधियों के द्वारा किये जाने वाले अपराधों की खोजबीन करने, देश की आंतरिक सम्पत्ति की रक्षा करने और जो अपराधी हैं और उनका अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य जुटाना ही पुलिस का कार्य है। अपराधी घोषित करने के बाद पुलिस संबंधित व्यक्ति को अदालत को सौंपती है।

## पुलिस सुधार

- भारत की पुलिस 155 साल पुराने पुलिस अधिनियम के तहत ही काम कर रही है। आजादी के बावजूद किसी ने 1861 के पुलिस अधिनियम में बदलाव की जरूरत नहीं समझी
- वर्ष 1902-03 में ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय पुलिस आयोग ने इस दिशा में पहला प्रयास किया था। उसके बाद इस मुद्दे पर राष्ट्रीय स्तर पर छह और राज्य स्तर पर पाँच आयोगों का गठन किया जा चुका है
- वर्ष 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद पुलिस सुधार की सिफारिशों के लिए धरमवीर की अध्यक्षता में 15 नवंबर, 77 को राष्ट्रीय पुलिस आयोग का गठन किया गया था। आयोग ने चार साल बाद अपनी रिपोर्ट देने की शुरूआत की। मई,1981 तक इसने कुल आठ रिपोर्टस दीं।
- देश में इमरजेंसी के दौरान हुई ज्यादतियों की जाँच के लिए गठित शाह आयोग ने भी ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति से बचने के लिए पुलिस को राजनैतिक प्रभाव से मुक्त करने की बात कही थी।
- सर्वोच्च न्यायालय का पुलिस सुधार मुख्यत: स्वायत्तता, जवाबदेही और लोकोन्मुखता के बिंदुओं पर केंद्रित है। पुलिस की स्वायत्तता को मजबूत कर उसे बाह्य दबावों से मुक्त रखने के लिये सर्वोच्च

न्यायालय ने निर्देश दिया कि डीजीपी, आइजी, एसपी, एसएचओ की दो वर्ष की निश्चित तैनाती मिलनी चाहिए तथा डीजीपी और अन्य चार वरिष्ठतम पुलिस अधिकारियों को उप पुलिस अधीक्षक स्तर तक के तबादलों का अधिकार दिया जाना चाहिये। पुलिस को कानूनी चौहद्दी में रखने के लिये राज्य पुलिस आयोग और पुलिस शिकायत प्राधिकरण की अवधारणा पर भी विचार किया गया। राज्यों को नए सिरे से लोकोन्मुख पुलिस अधिनियम बनाने का निर्देश दिया गया।

- पुलिस सुधारों पर सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों को लेकर राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों की अनुपालन स्थिति के एक आकलन में यह खुलासा हुआ है कि शीर्ष अदालत के निर्देशों को पूरी तरह से किसी भी एक राज्य ने लागू नहीं किया है। सरकारों ने इन निर्देशों को या तो अनदेखा किया है या फिर स्पष्ट रूप से मानने से इनकार कर दिया है। या फिर निर्देशों की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को कमजोर कर दिया है।
- यह अध्ययन कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनीशिएटिव (सीएचआरआई) द्वारा किया गया है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि केवल 18 राज्यों ने 2006 के बाद नए पुलिस एक्ट को पारित किया है, जबकि बाकी राज्यों ने सरकारी आदेश/अधिसूचनाएँ जारी की हैं लेकिन किसी भी एक राज्य ने अदालत के निर्देशों का पूरे तरीके से पालन नहीं किया है।

# PT / Mains - प्रश्न

## संभावित प्रश्न

1. राज्यों में पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के ताजा निर्देशों के विषय में निम्नलिखित में से क्या सही है?
   1. राज्य-सरकार यह पद खाली होने के कम-से-कम तीन महीने पहले संघ लोक सेवा आयोग को सूचना दें।
   2. संघ लोक सेवा आयोग इस पद के योग्य अधिकारियों की सूची राज्य-सरकार को देगी और सरकार इस सूची में से ही किसी एक को इस पद पर नियुक्त करेगी।

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

2. राज्यों में पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति संबंधित सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों के अनुसार-
   1. पुलिस महानिदेशक का कार्यकाल कम-से-कम 2 वर्ष का होगा।
   2. किसी अधिकारी के सेवानिवृत्त होने का प्रस्ताव उसके पुलिस-महानिदेशक के पद पर रहते नहीं पड़ेगा।
   3. कोई भी राज्य कार्यवाहक पुलिस महानिदेशक नियुक्त नहीं करेगा।

   उपर्युक्त कथनों में कौन-सा/से सही हैं?
   (a) केवल 1 और 2 (b) केवल 2 और 3
   (c) केवल 3 (d) 1, 2 और 3

   (उत्तर-D)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत में सर्वप्रथम पुलिस व्यवस्था की स्थापना लॉर्ड कार्नवालिस ने की थी।
   2. 1861 में पुलिस एक्ट द्वारा पुलिस को प्रांतीय-सरकारों के अधीन कर दिया गया।

   उपर्युक्त में से कौन-से कथन सही है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. भारत के संविधान के अनुच्छेद-246 के माध्यम से पुलिस को राज्य-सूची में रखा गया है।
   2. प्रत्येक राज्य सरकार, पुलिस बल को शासित करने वाले नियम एवं विनियम बनाती है।

   उपर्युक्त में कौन-सा/से कथन असत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-D)

5. भारतीय पुलिस व्यवस्था की समाज में छवि एवं कार्यशैली की पुलिस-सुधारों के संदर्भ में समीक्षा कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. निम्नलिखित सुधारों में से किस एक के लिए भारत सरकार ने वीरप्पा मोहली की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया है?
   (a) पुलिस-सुधार (b) कर-सुधार
   (c) तकनीकी शिक्षा-सुधार (d) प्रशासनिक-सुधार

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2008, उत्तर-D)

2. विचार करते हुए कि साइबरस्पेस देश के लिए खतरा प्रस्तुत करता है, भारत को ऐसे अपराधों को रोकने के लिए एक 'डिजिटल सशस्त्र बल' की आवश्यकता है। राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति, 2013 के प्रभावी कार्यान्वयन में दिखाई देने वाली चुनौतियों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए, इस नीति का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2015)

3. भारत में भीड़ हिंसा एक गंभीर कानून और व्यवस्था समस्या के रूप में उभर रही है। उपयुक्त उदाहरण देते हुए, इस प्रकार की हिंसा के कारणों एवं परिणामों का विश्लेषण कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2017)

GS World
Committed To Excellence

# दिल्ली की संवैधानिक परिस्थिति

*यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (संविधान एवं शासन प्रणाली) से संबंधित है।*

**दिल्ली की सरकार एवं उपराज्यपाल के बीच छिड़ी अघोषित संघर्षों को शायद सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से विराम मिल जाए। इस निर्णय ने जनता में निहित संप्रभुता के सिद्धांत को दुबारा स्थापित किया है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार-पत्रों 'जनसत्ता', 'राष्ट्रीय सहारा', 'नई दुनिया' 'नवभारत टाइम्स' तथा 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।**

## संपादकीय: दिल्ली का दरबार (जनसत्ता)

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद अब दिल्ली में उपराज्यपाल और दिल्ली सरकार के बीच चली आ रही रस्साकशी थम जाएगी। मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल लगातार आरोप लगा रहे थे कि उपराज्यपाल उन्हें काम नहीं करने दे रहे। उन्हें एक चपरासी तक नियुक्त करने का अधिकार नहीं है। जब से दिल्ली में आम आदमी पार्टी की सरकार बनी है, लगातार उपराज्यपाल और मुख्यमंत्री कार्यालय के बीच किसी न किसी बात को लेकर तकरार चलती रही है। जाहिर है, इससे प्रशासनिक कामकाज बाधित होता है। पहले उपराज्यपाल नजीब जंग के साथ तनातनी बनी रही और फिर अनिल बैजल आए, तो उनके साथ भी सरकार का तालमेल सही नहीं बैठ पाया। उपराज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच शुरू से ही अधिकारों को लेकर विवाद बना रहा। इसे लेकर दिल्ली उच्च न्यायालय में अपील की गई। अदालत ने अपने फैसले में स्पष्ट कहा कि उपराज्यपाल ही दिल्ली के वास्तविक प्रशासक हैं और उनके फैसलों को मानना दिल्ली सरकार की बाध्यता है। इस फैसले को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। उसी पर यह निर्णय आया है।

सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के मुताबिक दिल्ली सरकार अपने फैसले खुद करने को स्वतंत्र है। उपराज्यपाल उसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे। सरकार सिर्फ उन्हें अपने फैसलों से अवगत कराएगी, पर उपराज्यपाल उसमें किसी तरह के संशोधन का सुझाव नहीं देंगे। चूँकि सरकार के मंत्री चुने हुए प्रतिनिधि हैं, इसलिए उनके फैसलों पर अगर अपरिहार्य स्थिति में कोई असहमति जतानी पड़ेगी, तो उपराज्यपाल उसे राष्ट्रपति के पास विचार के लिए भेज सकते हैं। इस तरह सरकार और उपराज्यपाल कार्यालय के बीच चली आ रही तनातनी के चलते जो विकास कार्य रुक गए थे, दिल्ली सरकार की योजनाएं ठप पड़ी हुई थीं, वे सुचारु रूप से संचालित हो सकेंगी।

अभी तक दिल्ली सरकार को नौकरशाहों की तैनाती तक के लिए उपराज्यपाल से अनुमति लेनी पड़ रही थी, जिसमें कई बार असहमति उत्पन्न हुई, तो खींचतान बढ़ गई। यहाँ तक कि दिल्ली सरकार के मंत्रालयों में तैनात अधिकारी मंत्रियों का आदेश मानने के बजाय उपराज्यपाल के आदेश का पालन कर रहे थे। इस तरह योजनाएं अधर में लटकी हुई थीं। इस साल फरवरी में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मामले में नौकरशाहों ने मुख्यमंत्री का फैसला मानने से इनकार कर दिया, तो आम आदमी पार्टी कार्यकर्ताओं और मुख्य सचिव के बीच हिंसक झड़प तक की नौबत आ गई थी। इस पर नाराजगी जताते हुए सारे प्रशासनिक अधिकारी हड़ताल पर चले गए और यह हड़ताल पिछले महीने तब समाप्त हो पाई, जब मुख्यमंत्री ने उपराज्यपाल के कार्यालय में धरना दिया।

## खींच दी लक्ष्मण रेखा (राष्ट्रीय सहारा)

पाँच सदस्यीय संविधान पीठ का 535 पृष्ठीय सर्वसम्मत फैसला स्पष्टतया मोदी सरकार के खिलाफ है, जो दिल्ली के उपराज्यपाल के तमाम फैसलों को तार्किक ठहराती रही है। यह केजरीवाल की आप सरकार की जीत है। दिल्ली के मुख्यमंत्री अब स्वयं को पीड़ित नहीं बता पाएँगे और न ही अपनी सरकार के प्रदर्शन के लिए उपराज्यपाल पर आरोप नहीं लगा सकेंगे। इस फैसले के आधिकारिक निष्कर्ष यह है कि उपराज्यपाल केवल ''प्रशासक' हैं, और सीमित अर्थों में प्रशासनिक मुखिया हैं। मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाले दिल्ली के मंत्रिमंडल की सलाह को मानने को बाध्य हैं। उन्हें अपने कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है। उन्हें मंत्रियों की सलाह या राष्ट्रपति को प्रेषित मामलों पर आए आदेशों के अनुसार चलना है। वह प्रत्येक मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। हर मामले में उनकी सहमति की जरूरत नहीं है। वह अपवादस्वरूप स्थितियों में ही मामलों को राष्ट्रपति के पास प्रेषित कर सकते हैं, न कि ''हर दिन' या ''मशीनी अंदाज' में। इसका अर्थ हुआ कि सर्वोच्च अदालत ने अपने फैसले से दिल्ली उच्च न्यायालय के उस फैसले को पलट दिया है, जिसमें कहा गया था कि उपराज्यपाल अपने स्वतंत्र हैं और मंत्रियों की सलाह को मानने को बाध्य नहीं हैं। सच तो यह है कि कोई राज्यपाल/उपराज्यपाल अपने कार्य करने को स्वतंत्र नहीं होता। अपने वरिष्ठों के प्रति निष्ठा के मामले में भारतीय राज्यपाल अपने ब्रिटिश पूर्ववर्तियों का अनुशरण करते हैं। इस फैसले के आलोक में बेहतर तो यह हो कि दिल्ली के उपराज्यपाल बोरिया-बिस्तर समेट कर अपना इस्तीफा सौंप दें। लेकिन यह भी है कि भाजपा के राज्यपालों का रवैया भी कांग्रेस के राज्यपालों जैसा ही है। न तो उन्होंने अपने स्तर पर स्वतंत्रता दिखाई है, और न ही आत्मसम्मान। कुछ तो ऐसे हैं जो पार्टी कार्यकर्ताओं की भांति कार्य करते हैं, और उनके बयान और ट्वीट्स को देखें तो उनमें बेहद पक्षपात और ध्रुवीकरण करने की नीयत दिखाई पड़ती है। जस्टिस दीपक मिश्रा ने इस मामले में संवैधानिक विमर्श को ऊँचे पायदान पर पहुँचा दिया है। एक सौ बीस पृष्ठों में संविधानवाद समेत हमारे उदार संवैधानिक लोकतंत्र के बारह बुनियादी सिद्धांतों या संविधान के केंद्रीय विचार के रूप में सीमित अधिकारों की अवधारणा पर रोशनी डाली। भारत के प्रधान न्यायाधीश को साधुवाद देना होगा कि उन्होंने जस्टिस एके सीकरी और जस्टिस एएम खानविलकर के साथ मिलकर 237 पृष्ठों में जोरदार ढंग से अपना मत रखते हुए बहुमत का फैसला दिया। जस्टिस डीवाई चंद्रचूड़ ने प्रधान न्यायाधीश से सहमति जताते हुए कहा कि अनेक देशों में निरंकुशता के चलते लोकतंत्र को खतरा पैदा हो गया है। ''संवैधानिक नैतिकता' बनाए रखना जरूरी है। उन्होंने चार बुनियादी सिद्धांतों का उल्लेख किया, जिनमें उन्होंने धर्मनिरपेक्ष विचार को भी शामिल किया। जस्टिस अशोक भूषण ने 123 पृष्ठीय मत में फैसले से सहमति जताते हुए प्रतिनिधि सरकार तथा

अब दिल्ली सरकार का कामकाज उपराज्यपाल की दखलंदाजी से मुक्त हो गया है। इसे आम आदमी पार्टी की विजय के रूप में नहीं, बल्कि सरकारी कामकाज में आ रही अड़चनें दूर हो जाने के रूप में देखा जाना चाहिए। अब चुनौतियाँ अरविंद केजरीवाल सरकार के सामने हैं कि वह बचे हुए कार्यकाल में अपने वादों को कितना पूरा कर पाती है। अभी तक वह इस बात की आड़ लेती आ रही थी कि उसे काम नहीं करने दिया जा रहा, पर अब वह आड़ खत्म हो गई है। अब शायद उन्हें यह आरोप लगाने और उसका राजनीतिक लाभ लेने का भी मौका नहीं मिलेगा कि केंद्र सरकार उनके साथ वैमनस्यतापूर्ण व्यवहार कर रही है। पहले ही पार्टी में अंदरूनी झगड़े हैं, कई विधायकों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं, ऐसे में अगर अरविंद केजरीवाल अपना प्रशासनिक प्रदर्शन बेहतर नहीं करते, तो उनकी मुश्किलें बढ़ेंगी ही।

## मिलकर काम करने की नसीहत ( नई दुनिया )

दिल्ली सरकार बनाम उपराज्यपाल मामले में फैसला देते हुए सुप्रीम कोर्ट ने संभवत: पहली बार केंद्र सरकार, राज्यों में संवैधानिक प्रमुख के रूप में नियुक्त उसके प्रतिनिधि यानी राज्यपाल या उपराज्यपाल तथा राज्य की निर्वाचित सरकारों के कामकाज के दायरों को परिभाषित किया है। हालाँकि दिल्ली देश के अन्य राज्यों की तरह पूर्ण राज्य नहीं है और तीन बड़े विषय जमीन, कानून-व्यवस्था और पुलिस इसके शासन के अधीन नहीं आते। फिर भी यह तो कहना होगा कि प्रधान न्यायाधीश जस्टिस दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ का यह फैसला इस मामले में नजीर स्थापित करता है कि संघीय संरचना में केंद्र व राज्य बेहतर तालमेल के साथ कैसे काम करें। सुप्रीम कोर्ट की इस बेंच ने अपने फैसले से जहाँ यह जताया कि दिल्ली के उपराज्यपाल केंद्र की कठपुतली की तरह काम नहीं कर सकते और न ही उन्हें करना चाहिए, वहीं दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल को भी एक तरह से चेता दिया कि वे अराजकतावादी की तरह व्यवहार नहीं कर सकते और न ही हर जगह अपनी मनमर्जी चला सकते हैं।

सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला कहता है कि संविधान के तहत तानाशाही या अराजकता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। हालाँकि यह फैसला अन्य राज्यों से संबंधित नहीं है, लेकिन यह जरूर बताता है कि राज्यों व केंद्र के बीच संबंध कैसे होना चाहिए। इस फैसले का एक निहितार्थ यह भी है कि केंद्र सरकार राज्यों की निर्वाचित सरकारों पर अपनी मर्जी थोप नहीं सकती और न ही उन्हें अपने हिसाब से किसी भी दिशा में चला सकती है, क्योंकि वे लोकप्रिय जनादेश के जरिये सत्ता में आती हैं। दोनों को ही देश के संविधान के दायरे में रहकर काम करना चाहिए।

इसमें यह नैतिक संदेश निहित है कि विभिन्न् संस्थाएँ संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या सिर्फ शब्दों के आधार पर न करते हुए उसमें निहित भाव को समझें और उसी के अनुरूप काम भी करें। यह मामला सुप्रीम कोर्ट के समक्ष इसीलिए आया क्योंकि दिल्ली सरकार को लग रहा था कि केंद्र उसे अपने हिसाब से काम नहीं करने दे रहा है और एलजी के माध्यम से रोड़े अटकाए जा रहे हैं। भले ही संवैधानिक व्यवस्था के लिहाज से उपराज्यपाल दिल्ली के प्रशासक हों, लेकिन वह मंत्रिपरिषद की सहायता और उसकी राय पर काम करने के लिए बाध्य हैं। चूँकि केजरीवाल सरकार दिल्ली के मतदाताओं का भरोसा जीतते हुए सत्ता में आई, लिहाजा वह इसी का हवाला देते हुए एलजी की कार्यशैली पर असंतोष जताती रही है।

संविधान की सोद्देश्य विवेचना पर बल दिया। उन्होंने कहा कि अदालतों को प्रतिनिधि लोकतंत्र, कानून के शासन तथा संविधान की भावना को पुष्ट करने के लिए तथ्यात्मक व्याख्या करनी चाहिए। उन्होंने उचित ही कहा कि संविधान के मूल को ''संविधान की भावना' तथा अंगीकृत उद्देश्य के आलोक में समझा जाना चाहिए। थॉमस जेफरसन का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि सरकार को शासितों की सहमति से शक्ति मिलनी चाहिए। अपने फैसले के अंत में इन आदर्शों का जिक्र करते हुए उन्होंने दिल्ली के उपराज्यपाल की शक्तियों पर कानून की तरजीह होने की बात कही। किसी संवैधानिक प्राधिकार की निरंकुशता पर तल्ख टिप्पणी की। सच तो यह है कि संवैधानिक पद पर आरूढ़ किसी को भी नहीं बख्शा। पीठों के गठन तथा न्यायाधीशों के चयन में संविधान के उच्च सिद्धांतों और तकाजों की बात कही। प्रधान न्यायाधीश ने भी लोकतंत्र पर संभ्रांत वर्ग के एकाधिकार और सरकार के संभ्रांतीय हो जाने की बात कही। लेकिन हैरतन उन्होंने बहुमतवादिता की बाबत कुछ नहीं कहा जबकि लोकप्रियता के नाम पर ऐसी प्रतिनिधि सरकारें कई दफा सत्तारूढ़ हो जाती हैं जो अल्पसंख्यकों के खिलाफ कार्य करती हैं। इस प्रकार उस संवैधानिक करार की भावना को ही चोटिल कर डालती हैं, जिसके आधार पर स्वयं राष्ट्र का निर्माण हुआ है। अलबत्ता, यह जरूर कहा कि प्रतिनिधि सरकार तक सभी की पहुँच होनी चाहिए और ऐसी सरकार को जैसा कि उन्होंने कहा ''संविधान के अंत:करण' की बलि नहीं चढ़ानी चाहिए। बी.आर. अंबेडकर की तरह ही जस्टिस मिश्र ने स्वीकार किया कि ''संवैधानिक नैतिकता' संवैधानिक सिद्धांतों की अनुपालना में ही निहित है। यह कुदरन नहीं है, बल्कि सतत प्रयासों से संवैधानिक लोकतंत्र का यह बुनियादी मूल्य सहेजा जाता है। इसी प्रकार उन्होंने ''संवैधानिक वस्तुनिष्ठता' की बात कही। कहा कि यह विचार संतुलन बनाए रखने के लिए जरूरी है ताकि विधायिका और कार्यपालिका अपने नियत दायरे में रह कर कार्य निष्पादन कर सकें। ऐसा इसलिए कि ''विधिक संविधानिक विकास' शक्तियों के वितरण और पृथकीकरण पर आधारित है। इनमें से किसी के पास एकाधिकार नहीं है। कोई बड़ा या खुदमुख्तियार नहीं है। उन्होंने कहा कि इस प्रकार अनुच्छेद-239 एए (4) में ''कोईमामला' का अर्थ ''प्रत्येक मामला' नहीं होता। इस प्रकार उपराज्यपाल किसी मामले को राष्ट्रपति को प्रेषित नहीं कर सकते। उन्हें ''संवैधानिक वस्तुनिष्ठता' का ध्यान रखना होगा। इस अधिकार को दुर्लभतम से दुलर्भ मामलों में ही इस्तेमाल कर सकते हैं, जिनके पीछे ठोस और वैध कारण होने चाहिए। उपराज्यपाल मंत्रिमंडल के प्रत्येक फैसले को बदलने का अधिकार नहीं रखते। भिन्न राय रखनी ही है, इसलिए मंत्रिमंडल के फैसले से भिन्न रवैया अख्तियार नहीं कर सकते। प्रधान न्यायाधीश ने स्पष्ट कहा है कि उपराज्यपाल की मंत्रिमंडल से भिन्न राय कभी भी इस अवधारणा पर आधारित नहीं होनी चाहिए कि ''भिन्न राय रखने का उनके पास अधिकार' है। मत भिन्नता ''संवैधानिक विास' पर आधारित होनी चाहिए। इसी के साथ मंत्रियों को भी ध्यान रखना चाहिए कि दिल्ली पूर्ण राज्य नहीं है और उपराज्यपाल बराय नाम मुखिया नहीं हैं, बल्कि उनके पास प्रशासक की शक्तियां हैं। दिल्ली विशेष प्रकार का केंद्रशासित प्रदेश है। न तो उपराज्यपाल को और न ही मंत्रियों को ऐसा सोचना चाहिए कि वे महत्त्वपूर्ण हो गए हैं, बल्कि उन्हें संवैधानिक कायदों, मूल्यों और अवधारणों के मुताबिक अपने दायित्व का निवर्हन करना है।

## चुनी सरकार की सत्ता ( नवभारत टाइम्स )

राजधानी की वैधानिक-प्रशासनिक स्थिति को लेकर एक बड़ी दुविधा समाप्त हो गई है। दिल्ली सरकार बनाम एलजी मामले में बुधवार को सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने साफ कर दिया कि लोकतंत्र में चुनी हुई सरकार अहम है, इसलिए जमीन और कानून-व्यवस्था को छोड़कर

जहाँ तक केंद्र (या कहें कि उपराज्यपाल) की बात है तो उसके पास भी केजरीवाल सरकार के इरादों पर संदेह करने का पर्याप्त आधार था। आखिर अरविंद केजरीवाल ने अपने पिछले संक्षिप्त कार्यकाल में उस संवैधानिक प्रावधान को मानने से इनकार कर दिया था जो यह कहता है कि राज्य विधान सभा में विधेयक पेश करने से पूर्व राज्यपाल या उपराज्यपाल के जरिये राष्ट्रपति की सहमति ली जाए, भले ही ऐसा विधेयक राज्य सूची या समवर्ती सूची में दर्ज मामलों पर कानून बनाने से संबंधित हो। लेकिन तब केजरीवाल ने उनकी सरकार को समर्थन दे रही कांग्रेस पार्टी और विपक्ष में बैठी भाजपा के जबर्दस्त विरोध के बावजूद लोकपाल विधेयक को सीधे विधान सभा में पेश कर दिया। जाहिर है, यह विधेयक पारित नहीं हुआ और इसी को आधार बनाते हुए केजरीवाल मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए।

चूँकि केजरीवाल शुरुआत से ही एक निर्वाचित मुख्यमंत्री के बजाय किसी एनजीओ के मुखिया की तरह बर्ताव करते नजर आए हैं, लिहाजा दिल्ली के नए उपराज्यपाल भी उनकी कार्यशैली को लेकर सशंकित रहे। वे दिल्ली सरकार की ओर से आने वाले हर योजना प्रस्ताव को राष्ट्रपति के पास भेजने लगे, जिससे क्रियान्वयन में देरी होने लगी। मुख्यमंत्री केजरीवाल का यह आरोप रहा है कि उनकी सरकार द्वारा स्वीकृत अनेक योजनाओं को इसी तरह राष्ट्रपति की मंजूरी के इंतजार में अटका दिया गया। इससे तो यही लगता है कि केंद्र सरकार अगले चुनाव में उनकी पार्टी की हार सुनिश्चित करने के लिए राजनीति खेल रही है।

सुप्रीम कोर्ट ने अपने इस फैसले में संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप जहाँ उपराज्यपाल की कार्य संबंधी सीमाओं को परिभाषित किया, वहीं साथ ही साथ यह भी बता दिया कि दिल्ली सरकार को भी एक दायरे में ही रहकर काम करना होगा, चूँकि दिल्ली अन्य राज्यों की तरह कोई पूर्ण राज्य नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 239एए में दर्ज प्रावधानों का हवाला देते हुए इस फैसले में यह भी इंगित किया गया कि हालाँकि उपराज्यपाल को यह अधिकार है कि किसी मसले पर राज्य सरकार के साथ मतभेद होने की स्थिति में वह इसे आगे राष्ट्रपति के पास भेज सकते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वे हर मामले में ऐसा करें। यह सही है कि सरकार अपने कामकाज से जुड़े हर मामले या फैसले पर उपराज्यपाल से चर्चा करने या उनके पास भेजने के लिए बाध्य है, लेकिन उपराज्यपाल यांत्रिक तरीके से उसे राष्ट्रपति के पास नहीं भेज सकते। आखिर निर्वाचित सरकार जनता के प्रति जवाबदेह होती है और लोकतंत्र में असली शक्ति उसी के पास होनी चाहिए।

बहरहाल, सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला भले ही दिल्ली के संदर्भ में आया हो, जिसे पूर्ण राज्य का दर्जा भी प्राप्त नहीं है, लेकिन यह केंद्र-राज्य संबंध के सिलसिले में ऐतिहासिक महत्त्व का फैसला है। इस फैसले में राष्ट्रपति (दूसरे शब्दों में कहें तो केंद्र सरकार), राज्यों के संवैधानिक प्रमुख के रूप में उसके प्रतिनिधि (राज्यपाल या उपराज्यपाल) और राज्य सरकार के दायरों का स्पष्ट निर्धारण किया गया है। यह फैसला हमारे भारत के संघीय ढाँचे को समुचित आकार दे सकता है और ऐसा होना भी चाहिए। देश की आजादी के बाद तकरीबन दो दशक तक केंद्र व राज्यों में एक ही पार्टी की सरकारें रहीं, इससे संघीय ढाँचा भी एकात्मक होकर रह गया। लेकिन देश के विभिन्न् राज्यों में अलग-अलग पार्टियों की सरकारों के दौर में एकात्मक ढाँचा संभव नहीं है। दरअसल, दिल्ली में जो हो रहा है, वह इस संघीय और एकात्मक ढाँचे की अवधारणाओं के मध्य होने वाला टकराव है। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद इस टकराव का अंत हो जाना चाहिए।

बाकी सभी मामलों में फैसले लेने का अधिकार मंत्रिपरिषद के ही पास है। अदालत ने यह भी कहा कि एलजी के पास कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है। संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से फैसला दिया कि मंत्रिपरिषद के हर फैसले पर एलजी की सहमति जरूरी नहीं है, लेकिन फैसलों की जानकारी उन्हें जरूर देनी होगी। उम्मीद की जानी चाहिए कि इस फैसले के बाद दिल्ली का कामकाज बेरोकटोक और बिना अड़चन के चल सकेगा।

पिछले कुछ सालों से दिल्ली की अजीबोगरीब स्थिति बन गई थी और चुनी हुई सरकार का तो कोई वजन ही नहीं महसूस हो रहा था। आए दिन राज्य सरकार और एलजी में टकराव की खबरें आती थीं। राज्य सरकार कहती थी कि उसे काम नहीं करने दिया जा रहा है, अधिकारी उसकी बात नहीं सुन रहे। दूसरी तरफ एलजी की बातों से लगता था जैसे दिल्ली सरकार बात-बात पर अपना दायरा लाँघ रही है और सिर्फ राजनीतिक लाभ के लिए एलजी और उनके बहाने केंद्र पर काम न करने देने का आरोप मढ़ रही है। और तो और, खुद राज्य सरकार को ही कई बार आंदोलन करते देखा गया। यह सब देखकर लोगों के बीच यह सवाल भी पूछा जाने लगा था कि दिल्ली सरकार के पास जब कोई अधिकार ही नहीं हैं तो फिर केजरीवाल सरकार से पहले की दिल्ली सरकारों ने इतने सारे बड़े-बड़े काम कैसे कर लिए?

सच्चाई यही है कि दिल्ली राज्य के गठन के बाद से ही केंद्र और दिल्ली सरकार में कामकाजी सामंजस्य बना हुआ था, लेकिन पिछले तीन-चार वर्षों में यह बिल्कुल ही टूट गया। ऐसे में दिल्ली सरकार के अधिकारों को एक बार फिर से परिभाषित करना जरूरी हो गया था। वैसे भी दिल्ली का मामला इस अर्थ में असाधारण है कि यह न तो एक सामान्य राज्य है, न ही केंद्रशासित प्रदेश। इसकी स्थिति दोनों से अलग है। संविधान के अनुच्छेद 239 एए में साफ कहा गया है कि जमीन से जुड़े मामले, कानून-व्यवस्था और पुलिस को छोड़कर बाकी सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिल्ली सरकार के पास है। उसी की रोशनी में अब सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि उपराज्यपाल उसके फैसलों को रोक नहीं सकते। ज्यादा समस्या होने पर वे किसी खास फैसले को राष्ट्रपति के पास भेज सकते हैं, लेकिन सबको नहीं। कोर्ट का इशारा है कि एलजी मोटे तौर पर राज्यपाल जैसी सजावटी भूमिका ही निभाएँ। उम्मीद है कि सभी पक्ष इस निर्णय का सम्मान करेंगे और दिल्ली में ऊपरी स्तर पर निरंतर जारी बेचैनी खत्म होगी।

## क्या कारण है कि दिल्ली के लिए पूर्ण राज्य के दर्जे की जिद की जा रही है? (दैनिक जागरण)

इस पर हैरानी नहीं कि सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद भी दिल्ली सरकार और उप राज्यपाल के बीच अधिकारों की लड़ाई खत्म होने का नाम नहीं ले रही है। दोनों के बीच अभी भी टकराव की स्थिति बनी हुई है। दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल और उप राज्यपाल अनिल बैजल के बीच मुलाकात के बाद भी जिस तरह दिल्ली के शासन संचालन के तौर-तरीकों पर उपजे मतभेद दूर नहीं हो सके उससे तो यही लगता है कि सुप्रीम कोर्ट के फैसले को सही तरीके से समझने से इन्कार किया गया। हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में दोनों पक्षों को नसीहत दी थी और दोनों को ही उनकी सीमाएं भी बताई थीं, लेकिन पता नहीं कैसे और क्यों इस फैसले के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल लिया गया कि उप राज्यपाल के पर कतरे गए और इस तरह दिल्ली सरकार की जीत हुई? यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि ऐसा निष्कर्ष ही समस्या के समाधान में बाधक बना। सुप्रीम कोर्ट का फैसला आते ही दिल्ली सरकार

Committed To Excellence

दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले को अपनी जीत बताते हुए जश्न मना रहे हैं, लेकिन कदाचित उन्हें इस बात का भान नहीं कि उन्होंने अपनी कार्यशैली के जरिये अब तक जो कांटे बोए हैं, उससे उनकी राह और मुश्किल होने वाली है। अब वे अपनी नाकामियों के लिए दूसरों को दोष नहीं दे सकते और न ही कोई बहाना बना सकते हैं। वास्तव में उनकी असली परीक्षा तो अब शुरू हुई है। उनके विरोधियों की प्रतिक्रियाएँ बताती हैं कि उनकी आगे की राह कितनी संघर्षपूर्ण है।

उसे अपने हिसाब से लागू करने में जुटी और इस क्रम में वह सबसे पहले अधिकारियों की नियुक्ति-तबादले करने की दिशा में आगे बढ़ी, लेकिन उसका सामना इस तथ्य से हुआ कि ऐसा करना तो उप राज्यपाल का अधिकार है और यह अधिकार गृह मंत्रलय की 2015 की जिस अधिसूचना से मिला है उसे सुप्रीम कोर्ट ने रद नहीं किया है। कहना कठिन है कि दिल्ली सरकार का झगड़ा एक बार फिर सुप्रीम कोर्ट के समक्ष पहुँचेगा या नहीं, लेकिन इसमें संदेह है कि शीर्ष अदालत दिल्ली सरकार और उप राज्यपाल के बीच वह सामंजस्य पैदा कर सकती है जो दिल्ली के शासन को सुगमता से चलाने के लिए आवश्यक है।

उप राज्यपाल से नाकाम मुलाकात के बाद अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने केंद्र सरकार पर तोहमत मढ़ने में देर नहीं की। उनके मुताबिक केंद्र सरकार सुप्रीम कोर्ट के फैसले को मानने से इन्कार कर रही है और अगर वह ऐसा करेगी तो फिर देश में अराजकता फैल जाएगी। उन्होंने यह रेखांकित करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी कि केंद्र सरकार का एकमात्र लक्ष्य दिल्ली सरकार को परेशान करना है। नि:संदेह दिल्ली सरकार और केंद्र सरकार के रिश्ते सहज नहीं, लेकिन यह स्थापित करने का कोई मतलब नहीं कि केंद्रीय सत्ता केजरीवाल सरकार को काम नहीं करने देना चाहती। दिल्ली की स्थिति शेष राज्यों से भिन्न है। देश की राजधानी होने के नाते दिल्ली सरकार वह सब कुछ नहीं कर सकती जो करने का अधिकार अन्य राज्यों की सरकारों को है। मुश्किल यह है कि आम आदमी पार्टी अपनी सरकार को अन्य राज्यों से कमतर मानने को तैयार नहीं। उसे यह समझ आए तो बेहतर कि दिल्ली सरकार के सीमित अधिकारों का रोना रोने और उसे राष्ट्रीय मसला बनाने से कुछ हासिल होने वाला नहीं है। आखिर जब सीमित अधिकारों के साथ अन्य नेता दिल्ली में बिना किसी झगड़े-झंझट के सरकार चला चुके हैं तो फिर आम आदमी पार्टी के नेता ऐसा क्यों नहीं कर पा रहे हैं? क्या कारण है कि दिल्ली के लिए पूर्ण राज्य के दर्जे की जिद की जा रही है?

## GS World टीम...

### सारांश

- उपराज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच शुरू से ही अधिकारों को लेकर विवाद बना रहा। इसे लेकर दिल्ली उच्च न्यायालय में अपील की गई। अदालत ने अपने फैसले में स्पष्ट कहा कि उपराज्यपाल ही दिल्ली के वास्तविक प्रशासक हैं और उनके फैसलों को मानना दिल्ली सरकार की बाध्यता है। इस फैसले को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई।
- सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के मुताबिक दिल्ली सरकार अपने फैसले खुद करने को स्वतंत्र है। उपराज्यपाल उसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे। सरकार सिर्फ उन्हें अपने फैसलों से अवगत कराएगी, पर उपराज्यपाल उसमें किसी तरह के संशोधन का सुझाव नहीं देंगे। चूँकि सरकार के मंत्री चुने हुए प्रतिनिधि हैं, इसलिए उनके फैसलों पर अगर अपरिहार्य स्थिति में कोई असहमति जतानी पड़ेगी, तो उपराज्यपाल उसे राष्ट्रपति के पास विचार के लिए भेज सकते हैं।
- अनुच्छेद 239 एए (4) में ''कोई मामला' का अर्थ ''प्रत्येक मामला' नहीं होता। इस प्रकार उपराज्यपाल किसी मामले को राष्ट्रपति को प्रेषित नहीं कर सकते। उन्हें ''संवैधानिक वस्तुनिष्ठता' का ध्यान रखना होगा। इस अधिकार को दुर्लभतम से दुर्लभ मामलों में ही इस्तेमाल कर सकते हैं, जिनके पीछे ठोस और वैध कारण होने चाहिए। उपराज्यपाल मंत्रिमंडल के प्रत्येक फैसले को बदलने का अधिकार नहीं रखते।
- दिल्ली का मामला इस अर्थ में असाधारण है कि यह न तो एक सामान्य राज्य है, न ही केंद्रशासित प्रदेश। इसकी स्थिति दोनों से अलग है। संविधान के अनुच्छेद-239 एए में साफ कहा गया है कि जमीन से जुड़े मामले, कानून-व्यवस्था और पुलिस को छोड़कर बाकी सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिल्ली सरकार के पास है।

### दिल्ली

- आजादी के बाद जो देश की पहली सरकार बनी, उसने देश भर के राज्यों को चार श्रेणियों में बांटा था। दिल्ली को तब 'सी' श्रेणी में रखा गया था। इस श्रेणी के राज्यों का मुखिया एक चीफ कमिश्नर होता था। इसके नियमों के अनुसार दिल्ली में 1952 में विधान सभा का भी गठन किया गया था। इस विधान सभा को कानून बनाने और शासन चलाने में चीफ कमिश्नर को सलाह देने का भी अधिकार था, लेकिन यह व्यवस्था ज्यादा समय तक नहीं चली।
- राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश पर 1956 में दिल्ली को राज्यों की श्रेणी से हटा दिया गया। इससे दिल्ली केंद्र शासित प्रदेश बन गई, इसकी विधान सभा समाप्त हो गई और इसके स्थान पर म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन (डीएमसी) का गठन कर दिया गया।
- 1966 में 'दिल्ली प्रशासन कानून- 1966' लागू कर दिया गया। इसके अंतर्गत दिल्ली में मेट्रोपोलिटन काउंसिल की व्यवस्था की गई और

चीफ कमिश्नर के पद को भी समाप्त कर दिया गया। इसकी जगह अब उपराज्यपाल ने ले ली।

- सात नवम्बर 1966 को दिल्ली का पहला उपराज्यपाल नियुक्त किया गया। नई व्यवस्था में मेट्रोपोलिटन काउंसिल उपराज्यपाल को सिर्फ सलाह दे सकती थी। इसके पास विधायिका वाले अधिकार नहीं थे। इस वजह से दिल्ली में पूर्ण अधिकार प्राप्त विधान सभा की माँग उठने लगी।
- तकरीबन 20 साल बाद 1987 में भारत सरकार ने इस माँग पर फैसला करने के लिए सरकारिया समिति का गठन किया। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर 1991 में 69वाँ संविधान संशोधन किया गया। इसके द्वारा एक बार फिर से काउंसिल की जगह दिल्ली विधान सभा को स्थापित कर दिया गया। आज जो जंग दिल्ली के मुख्यमंत्री और उपराज्यपाल के बीच छिड़ी है, वह इसी संविधान संधोधन से जुड़ी हुई है।
- 1991 में हुए इस संशोधन से दिल्ली को 'केंद्र प्रशासित प्रदेश' के स्थान पर 'राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र' घोषित कर दिया गया। इसके साथ ही गवर्नमेंट ऑफ नेशनल कैपिटल टेरिटरी (एनसीटी) ऑफ दिल्ली एक्ट 1991 के जरिये दिल्ली में विधान सभा गठन को भी मंजूरी दे दी गई
- एनसीटी कानून 1993 में लागू हुआ और तभी पहली बार दिल्ली में विधान सभा चुनाव करवाए गए. इन चुनावों में भाजपा को बहुमत मिला और मदन लाल खुराना दिल्ली की पहली चुनी हुई सरकार के मुख्यमंत्री बन गए. इस तरह दिल्ली में विधान सभा का गठन तो हो गया लेकिन उसे पूर्ण राज्य का दर्जा मिले बगैर।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-239 में केंद्रशासित प्रदेशों में 'प्रशासक' की व्यवस्था की बात कही गई है। इसे अंडमान-निकोबार, पुदुच्चेरी और दिल्ली में उपराज्यपाल कहा जाता है। 1991 में हुए संशोधन के बाद संविधान में अनुच्छेद-239 एए और 239 एबी जोड़ दिए गए थे।
- अनुच्छेद-239 एए की उपधारा 3 (ए) के अनुसार दिल्ली विधान सभा राज्य सूची या समवर्ती सूची में मौजूद किसी भी विषय पर कानून बना सकती है लेकिन उसे कानून-व्यवस्था, पुलिस और जमीन से संबंधित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार नहीं है।
- इस उपधारा में यह भी लिखा है कि दिल्ली विधान सभा उस हद तक ही किसी विषय पर कानून बना सकती है, जिस हद तक वह विषय किसी केंद्र प्रशासित राज्य पर लागू होता हो. इस वजह से राज्य सूची के वे मामले भी दिल्ली विधान सभा के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो गए जो केंद्रशासित प्रदेशों पर लागू नहीं होते। उदाहरण के लिए केंद्र शासित प्रदेशों में अलग से कोई लोक सेवा आयोग नहीं होता। यहाँ तैनात अधिकारियों का चयन केंद्रीय लोक सेवा आयोग द्वारा ही किया जाता है। इस कारण दिल्ली में तैनात प्रशासनिक अधिकारियों से जुड़े कानून बनाना, उनकी पदोन्नति और तबादले करने का अधिकार मुख्यमंत्री से ज्यादा उपराज्यपाल और केन्द्रीय गृह मंत्रालय को है
- संविधान के अनुच्छेद-239 एए की उपधारा 4 दिल्ली के मुख्यमंत्री और उनके मंत्रिमंडल को यह अधिकार देती है कि वे अपनी नीतियाँ एवं कार्यक्रम लागू करवाने के लिए उपराज्यपाल को सलाह दें एवं सहायता प्रदान करें। लेकिन यहाँ भी उपराज्यपाल दो तरह से मुख्यमंत्री को पछाड़ देते हैं। एक, मुख्यमंत्री सिर्फ उन्हीं मामलों में सलाह दे सकते हैं जिन मामलों में दिल्ली विधान सभा को कानून बनाने का भी अधिकार हो। दूसरा, यदि मुख्यमंत्री और उपराज्यपाल के बीच सहमति नहीं बनती तो इस परिस्थिति में राष्ट्रपति का फैसला ही मान्य होगा। लेकिन जब तक राष्ट्रपति इस पर फैसला लेते हैं तब तक उपराज्यपाल को यह अधिकार है कि वह यदि जरूरी समझे तो अपने विवेक से फैसला ले सकता है।
- संविधान के अनुच्छेद-1 में भारत का राज्य क्षेत्र तीन श्रेणियों में बांटा गया है- (अ) राज्य क्षेत्र (ब) केंद्रशासित प्रदेश और (स) ऐसे अन्य राज्य क्षेत्र, जो भारत सरकार द्वारा किसी भी समय अर्जित किए जाएँ। वर्तमान में 28 राज्य, 7 केंद्रशासित प्रदेश हैं, किंतु कोई अर्जित राज्य क्षेत्र नहीं है।
- ब्रिटिश शासनकाल में वर्ष 1874 में कुछ अनुसूचित जिले बनाए गए। बाद में इसे मुख्य आयुक्तीय क्षेत्र के नाम से जाना जाने लगा। स्वतंत्रता के बाद इन्हें भाग-ग तथा घ राज्यों की श्रेणी में रखा गया। 1956 में 7वें संविधान संशोधन अधिनियम व राज्य पुनर्गठन अधिनियम के तहत इन्हें केंद्रशासित प्रदेशों के रूप में गठित किया गया। धीरे-धीरे, कुछ केंद्रशासित प्रदेशों को पूर्ण राज्य का दर्जा मिल गया। हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश व गोवा शुरुआत में केंद्रशासित प्रदेश थे लेकिन अब ये सभी पूर्ण राज्य हैं।

## PT èk Mains - प्रश्न

### संभावित प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश पर 1956 में दिल्ली को राज्यों की श्रेणी से हटाकर केन्द्रशासित प्रदेश बना दिया गया।
   2. 1966 में चीफ कमिश्नर के पद को समाप्त कर उपराज्यपाल की व्यवस्था की गई।

   उपर्युक्त में कौन-सा/से कथन सही है/हैं?

   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. 1991 में 69वें संविधान संशोधन से दिल्ली विधान सभा स्थापित की गई थी।
   2. इस संविधान ने दिल्ली को 'केन्द्रशासित प्रदेश' के स्थान पर 'राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र' घोषित किया।

   उपर्युक्त में कौन-सा/से कथन सही है/हैं?

   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2

   (उत्तर-C)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-239 में केन्द्रशासित प्रदेशों में 'प्रशासक' की व्यवस्था की बात कही गयी है जिसे दिल्ली में उपराज्यपाल कहा जाता है।
2. संविधान के अनुच्छेद-239(एए) के अनुसार, दिल्ली विधान सभा कानून-व्यवस्था, पुलिस और जमीन से जुड़े विषयों पर कानून नहीं बना सकती है।
3. दिल्ली का राज्य सभा में प्रतिनिधित्व है।

उपर्युक्त में कौन-से कथन सही हैं?

(a) केवल 1 और 3
(b) केवल 1 और 2
(c) केवल 2 और 3
(d) 1, 2 और 3

(उत्तर-D)

4. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

1. आजादी के बाद देश भर के राज्यों को चतुर्थ श्रेणी में बाँटा गया था एवं दिल्ली को तृतीय श्रेणी में रखा गया था।
2. तृतीय श्रेणी के राज्यों का मुखिया एक चीफ कमिश्नर होता था।
3. दिल्ली में 1952 में विधान सभा का गठन किया गया था।

उपर्युक्त में कौन-से कथन सही हैं?

(a) केवल 1 और 2
(b) केवल 1 और 3
(c) केवल 2 और 3
(d) 1, 2 और 3

(उत्तर-D)

5. संविधान के अनुच्छेद-239(एए) के संदर्भ में हाल ही में आए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

## पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. सूची-1 का मिलान सूची-2 से कीजिए एवं नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-

**सूची-1 (संविधान संशोधन)**

(A) संविधान (69वीं संशोधन) कानून, 1991
(B) संविधान (75वीं संशोधन) कानून, 2000
(C) संविधान (80वीं संशोधन) कानून, 2000
(D) संविधान (83वीं संशोधन) कानून, 2000

**सूची-2 (सामग्री)**

(1) राज्य-स्तरीय किराया ट्रिब्यूनल की स्थापना।
(2) अरूणाचल प्रदेश में पंचायतों मं अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण नहीं।
(3) गाँवों में या अन्य क्षेत्रीय-स्तर पर पंचायतों के संविधान।
(4) दसवें वित्त-आयोग की सिफारिशों को स्वीकृत करना।
(5) दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का दर्जा प्रदान करना।

**कूट-**

| | A | B | C | D |
|---|---|---|---|---|
| (a) | 5 | 1 | 4 | 2 |
| (b) | 1 | 5 | 3 | 4 |
| (c) | 5 | 1 | 3 | 4 |
| (d) | 1 | 5 | 4 | 2 |

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2001, उत्तर-A)

2. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-

1. राज्यसभा में केन्द्रशासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व नहीं है।
2. यह मुख्य चुनाव आयुक्त के अधिकार में है कि वह चुनावी-विवादों का समाधान करें।
3. भारतीय संविधान के अनुसार संसद में केवल लोकसभा एवं राज्यसभा आते हैं।

उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?

(a) केवल 1
(b) केवल 2 और 3
(c) केवल 1 और 3
(d) इनमें से कोई नहीं

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-?, उत्तर-D)

3. अध्यादेशों का आश्रय लेने वालों ने हमेशा ही शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत की भावना के उल्लंघन पर चिंता जाग्रत की है। अध्यादेशों को लागू करने की शक्ति के तर्काधार को नीट करते हुए विश्लेषण कीजिए कि क्या इस मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों ने इस शक्ति का आश्रय लेने को और सुगम बना दिया है। क्या अध्यादेशों को लागू करने की शक्ति का निरसन कर दिया जाना चाहिए?

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2015)

4. 69वें संविधान संशोधन अधिनियम के उन अत्यावश्यक तत्त्वों और विषमताओं, यदि कोई हों, पर चर्चा कीजिए, जिन्होंने दिल्ली के प्रशासन में निर्वाचित प्रतिनिधियों और उप-राज्यपाल के बीच हाल में समाचारों में आए मतभेदों को पैदा कर दिया है। क्या आपके विचार में इससे भारतीय परिसंघीय राजनीति के प्रकार्यण में एक नई प्रवृत्ति का उदय होगा?

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2016)

GS World
Committed To Excellence